साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
साहित्य यात्रा

प्रिय महोदय,

'साहित्य यात्रा' के

एक वर्ष (4अंक)	:	300 /- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	750 /- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100 /-
आजीवन सदस्यता	:	11000 /-
विदेश के लिए (3 वर्ष)	:	$ 60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रुपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

.....

फोन : .....

यहाँ से काटिए

चेक/ड्राफ्ट संपादक / प्रसार व्यवस्थापक, **साहित्य यात्रा,** पटना के नाम पर ही बनाएँ और निम्नलिखित पते पर हमें भेजने की कृपा करें :-

आप निम्न खाता विवरण पर ऑन लाइन भी पैसा जमा करा सकते हैं। पैसा जमाकर इसकी सूचना साहित्य यात्रा को अवश्य दें।

बैंक विवरण : पंजाब नेशनल बैंक, ए.एन. कॉलेज, पटना

खाता संख्या : 623000100016263, IFSC Code : PUNB0623600

संपादक
साहित्य यात्रा
ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001 (बिहार)
फोन : 9835063713/8507473724
ई-मेल : shahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

पत्रिका आप साहित्य यात्रा के पते पर मनीऑर्डर भेज कर भी मंगा सकते हैं।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-3 अंक-12 जुलाई-सितम्बर, 2017

परामर्शी

डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह

डॉ० संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो० (डॉ०) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ० सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ० रवीन्द्र पाठक

संपादक

प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08507473724
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

शुल्क दर :	एक वर्ष (4 अंक)	300
	तीन वर्ष (12 अंक)	750
	(डाक खर्च सहित)	
	संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	1100
	आजीवन सदस्यता	11,000
	विदेश के लिए	60 डॉलर (3 वर्ष)

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07
डॉ. कलानाथ मिश्र

आपके पत्र 10

आलेख

डॉ. स्मिता मिश्र
हिन्दी के नए तेवर गढ़ता मीडिया 11

डॉ. रमेश बर्णवाल
कितनी आमफ़हम है अखबारों की हिन्दी 15

डॉ. देवेन्द्र कौर ब्रैच
विज्ञापन और हिन्दी 25

डॉ. सारिका कालरा
हिन्दी भाषा : अस्मितामूलक प्रश्न और भविष्योन्मुखी संदर्भ 29

डॉ. आरती झा
हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय गीत : विकास और कथ्य 35

अनिल कुमार पाण्डेय
मीडिया समाज और हिन्दी 44

डॉ. इन्दु दत्ता तिवारी
समाचार पत्रों की बदलती भाषा 52

आचार्य बलवन्त
अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त हों 59

मंजू कुमारी
वैश्वीकरण और वैश्वीकृत समाजिक परिदृश्य 65

हरि जोशी
अमेरिका में हास्य व्यंग्य : समकालीन परिदृश्य 72

कविता

प्रांजल धर
बापू की कल्पना 76

आलेख

प्रो. राजेश्वर आनदेव
हिन्दी अपने गुणों के कारण बढ़ रही है। 77

डॉ. मीनाक्षी जोशी
मीडिया लेखन और हिन्दी 80

परिचय दास
मातृभाषा के नए प्रश्न 83

डॉ. शिखा कौशिक 'नूतन'
हिन्दी समाचार-पत्र व हिंग्लिश 86

दस्तावेज

धर्मवीर भारती
भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रूख : एक सर्वेक्षण 90

रिपोर्ट

सत्यप्रीय पाण्डेय
रामदरश मिश्र 93 के हुए 98

श्रद्धांजलि

प्रो. चंद्रकांत लाल दास 100

सम्पादकीय

मिट्टी पानी की भाषा

मानव ने श्रृष्टि में व्याप्त ध्वनियों को अपने अहर्निश प्रयास, अभ्यास तथा प्रतिभा से शब्द संकेतों में परिवर्तित कर ऐसी शक्ति अर्जित की जिसके बल पर वह किसी वस्तु को ही नहीं अपितु अशरीरी भाव और बोध को भी रूपायित कर लिया। भाषा में अद्भुत शक्ति समाहित है। यह देश और समाज में जादुई शक्ति की तरह कार्य करता है।

किसी भी राष्ट्र के लिए भाषा का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण इसलिए माना जाता है क्योंकि उसके साथ उस राष्ट्र की स्वतंत्रता, संप्रभुता, संस्कृति, परम्परा, मूल्य, आचार–विचार, एकता–अखंडता और स्वाभिमान का प्रश्न जुड़ा होता है। इस संदर्भ में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने अपने विचार इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है– ''राष्ट्र की बुनियाद, राष्ट्र की भाषा है। नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रहता है, और उसका शीराजा बिखरने नहीं देता।'' मनुष्यों की आकस्मिक रूप से एकत्र भीड़ मानव समूह की संज्ञा पा सकती है, परन्तु राष्ट्र की गरिमा पाने के लिए भूमि–खण्ड विशेष की ही नहीं एक संस्कृतिक विरासत और प्रबुद्ध मानव समाज की आवश्यकता होती है जो अपनी भाषा के बिना सम्भव नहीं है।

हमारी चिंतन प्रक्रिया जहाँ से आरम्भ होती है, वहीं से भाषा अपना काम शुरू कर देती है। भाषा है तो शब्द का होना अनिवार्य है। हमारी चिंतन प्रक्रिया मौलिक भाषा से ही जन्म लेती है, आकार पाती है। फिर हम उसे चाहे जिस भाषा में रूपान्तरित कर अभिव्यक्त करें। किन्तु रूपान्तरण के क्रम में चिंतन की मौलिकता को बचाए रखना कठिन होता है। अतः हम अपनी मिट्टी पानी की भाषा में जब अपनी बातों को रखते हैं तो वह अधिक प्रभावकारी होता है। नवीन विचारों की अभिव्यक्ति हेतु नए शब्दों की आवश्यकता पड़ती है और यदि शब्द उसी परिवेश के हों जिस परिवेश में विचारों का जन्म होता है तो अभिव्यक्ति में मौलिकता बची रहती है और विचारों में ऐसी जादुई शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो हमारे सम्पूर्ण संस्कार, सभ्यता, संस्कृति को समृद्धि प्रदान करने में सक्षम है। विचार और शब्द, शब्द और अर्थ के इस अन्योन्याश्रय संबंध पर विचार करने से हमें हमारे चिंतन, उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम के साथ ही हमारे

परिवेश, हमारी संस्कृति के बीच की एक अंतर्सम्बंध का पता चलता है। यह किसी भी देश के ज्ञान कोष के विकास के लिए आवश्यक होता है। तभी तो महादेवी वर्मा ने कहा कि 'भाषा मानव की सबसे रहस्यमय तथा मौलिक उपलब्धि है।'

हमारे विशाल देश की रूपात्मक विविधता उसकी सांस्कृतिक एकता उस देश की भाषा के साथ ही अग्रसारित होती है। इसीलिए कहा जाता है कि यदि किसी देश के नागरिकों के स्वाभिमान को मारना हो तो उसकी संस्कृति को मार दीजिए, यदि उस देश की संस्कृति को मारना हो तो उसकी चिंतन पद्धति को मार दीजिए और जब उस देश की चिंतन को शिथिल करना हो तो उसकी भाषा को मार दीजिए और यदि उस भाषा को मारना हो तो उसकी लिपि को मार दीजिए। तात्पर्य यह कि यदि किसी देश की सम्प्रभुता, स्वाभिमान, स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखना है तो उस देश की मिट्टी पानी की भाषा, उस देश के संस्कृति की भाषा, उस देश की आत्मा में रची बसी भाषा को खाद पानी डालकर पुष्ट रखना ही होगा।

हिन्दी ने सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना को वाणी प्रदान की है तथा राष्ट्रीय जीवन दर्शन और राष्ट्रीय संस्कृति को अभिव्यंजित किया है। लेकिन जिस हिन्दी ने स्वतंत्रता संग्राम में सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक सूत्र में पिरोने तथा स्वतंत्रता का संदेश प्रसारित करने में अहम भूमिका निभाई थी, जिस भाषा ने स्वतंत्रता संग्राम में त्याग बलिदान और सम्पर्क भाषा का काम किया, स्वतंत्रता के उपरान्त हिन्दी को उसका वह सम्मानित स्थान अपने ही देश में नहीं मिल पाया। स्वतंत्रता के 65 वर्ष बाद भी हिन्दी को लेकर अनेक विवाद गाहे बगाहे खड़े किए जाते रहे हैं। राजभाषा और राष्ट्रभाषा के वाकजाल में आज भी हिन्दी उलझी है। वैसे तो जनता के दिल में हिन्दी राष्ट्रभाषा बन चुकी है, अब सरकारी औपचारिकता जब भी पूरी हो।

हर भाषा अपने परिवेश की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम है। जब परिवेश बदलेंगे, परिस्थितियाँ बदलेंगी तो भाषा को भी बदलना ही होता है ताकि वह भाषा परिवेश की नई जरूरतों को पूरा कर सके। भाषा जल की तरह प्रवाहित है। प्रवाह के मार्ग में जो कुछ भी श्रेयस्कर, उपयोगी शब्द, घ्वति भाषा को मिलते हैं भाषा उसे अपने में समाहित करते चलती है। अपनी इस महायात्रा के मार्ग में हिन्दी को जो कुछ भी श्रेयस्कर और विशिष्ट मिला, हिन्दी ने ग्रहण करने में कभी संकोच नहीं किया। अंग्रेजी के अतिरिक्त हमने 'डच','पुर्तगाली', फ्रेंच, अरबी, फारसी, पश्तो आदि अनेक भाषाओं से शब्द ग्रहण कर शक्ति अर्जित की है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि हम **'डच'** नहीं जानते 'पुर्तगाली' नहीं जानते, फ्रेंच नहीं जानते पर उसके शब्दों का बखूबी, फर्राटे से प्रयोग करते हैं। क्योंकि हम उसका व्यवहार करते चले आए हैं। और हमारी भाषा ने उसे पचा लिया है। किसी अन्य भाषा के शब्दों को लेना हानिकारक नहीं है। वह तो

भाषा की प्रकृति है। इस प्रवाह को यदि अवरुद्ध कर दिया जाय तो भाषा कुण्ठित हो जाएगी। परन्तु ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि उनकी संख्या इतनी न हो कि मिल्टन के शब्दों में, वे स्थानीय भाषा के अधीन रहकर काम करने के स्थान पर उसी को अधिकारच्युत करने का यत्न करने लगें। हिन्दी ने उदारता पूर्वक सभी स्रोतों से शब्द ग्रहण कर अपनी सामासिक शक्ति अर्जित की। शब्द भाषा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। शब्द अर्थवान होते हैं एवं पद तथा वाक्य में अर्थ देने वाले होते हैं। शब्द की परिभाषा देते हुए महर्षि पातंजलि ने कहा है– शब्द कर्ण से उपलब्ध, बुद्धि से ग्राह्य तथा प्रयोग से स्फुटित होने वाली आकाशवाणी ध्वनि है।

अप्रैल 1947 में जब पं. जवाहर लाल नेहरू के पहल पर दिल्ली में एशियन कांफ्रेंस आयोजित की गयी तो उसमें एशिया के सभी देशें के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। उस समय गांधी जी बिहार में सांप्रदायिक दंगों को शांत करने में लगे थे। लेकिन नेहरू जी और लार्ड माउंटबेटन के आग्रह पर एशियन कांफ्रेंस में भाग लेने दिल्ली आए। 4 अप्रैल 1947 को कांफ्रेस को हिन्दी में संबोधित करते हुए उन्हों ने कहा – मैं स्वदेशी भाषा में आपसे बोलता हूँ तब मेरे जी में यह कहने की तलिक भी इच्छा नहीं कि मैं आप लोगों से माफी मांगता हूँ। ऐसा कहकर मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता आप मेरी राष्ट्रभाषा नहीं समझ सकते परंतु प्रयत्न कीजिए।

आज भारत के अलावे विश्व के अनेक राष्ट्रों में हिन्दी अत्यधिक लोकप्रिय है। भाषा जानने वालों की संख्या के आधार पर हिन्दी विश्व में प्रथम स्थान पर है। विश्व के अनेक राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में आज हिन्दी की पढाई हो रही है। आज विश्व में शायद ही ऐसा कोई देश होगा जहाँ हिन्दी में कम से कम एक पत्रिका या समाचार पत्र न छपता हो। लेकिन अपने ही देश में हिन्दी को लेकर क,ख,ग क्षेत्र आज भी बना है। कामकाज में पूर्ण रूप से हिन्दी का प्रयोगा नहीं हो पा रहा है ऐसे में हिन्दी अपने देश में आज कहाँ खड़ी है? यह प्रश्न विचारणीय है।

अतः इस अंक में हमने वर्त्तमान भाषाई परिदृश्य और राष्ट्रीयता विषय पर विशेष सामग्री समेटने की चेष्टा की है। राजस्थान में आयोजित (1 से 12 अक्टूबर) हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर पाठकों को यह अंक समर्पित करते हुए हमें हर्ष है। दस्तावेज स्तंभ के अंतर्गत इस बार हमने **'कल्पना'** में प्रकाशित धर्मवीर भारती का लेख भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रूख : एक सर्वेक्षण प्रकाशित कर रहें हैं। यह तद्युगीन भाषाई विमर्श पर प्रकाश डालने में सक्षम है। आशा है पाठक इसे पसंद करेंगे।

कलानाथ मिश्र

आपके पत्र

आदरणीय संपादक महोदय

साहित्य-यात्र का अप्रैल-जून, 2017 अंक मुझे मिला। इस अंक से मैं काफी प्रभावित हुई। आलेख, समीक्षा, कहानी, गजल, कविता आदि साहित्य की विविध विधाओं से साहित्य-यात्रा सजी है। यह अंक एक ओर जहाँ साहित्य के अतीत के महत्वपूर्ण विषयों पर विवेचन करता है, वही दूसरी ओर समकालीन साहित्यिक गतिविधियों से भी पुष्ट है। कुल मिलकर कहा जा सकता है कि पत्रिका के लेख संतुलिन और सारगर्भित हैं। मानक हिन्दी पत्रिकाओं की सूची में साहित्य-यात्रा का स्थान महत्वपूर्ण है। पत्रिका निरंतर आगे बढ़ती रहे, यही हमारी शुभकामाना है।

डॉ० रीतामणि वैश्य, सहयोगी अध्यापिका,
हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी।
संपादिका, पूर्वोदय शोध मीमांसा
फोन न.-9435116133, ई-मेल-ritamonibaishya841@gmail-com

साहित्य यात्रा का अप्रैल-जून 2017 अंक मिला। पत्रिका के आवरण चित्र ने ध्यान खींचा। अन्दर के पन्नों पर कई अच्छे लेख, कविताएँ एवं समीक्षाएं पढ़ने को मिलीं। हर बार की तरह सम्पादकीय पठनीय लगी। डॉ. सत्य प्रिय पाण्डेय का लेख श्रवण चरित का लोक विमर्श लोकप्रसिद्ध श्रवण कुमार के चरित्र के नए आयाम खोलता है। भावना मासीवाल के लेख से कवि भवानी प्रसाद मिश्र के संस्मरणकार रूप का परिचय हुआ। डॉ. रामप्रकाश द्विवेदी का लेख हिंदी के डिजिटल स्वरुप के बारे में मूल्यवान जानकारी देता है। पत्रिका की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

डा. अभिमन्यु कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्व विद्यालय

साहित्य यात्रा उत्तरोतर नए स्वरुप में निखरती जा रही रही है। पत्रिका का अप्रैल-जून 2017 अंक का संयोजन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। चंपारण सत्याग्रह पर आधारित सम्पादकीय अत्यंत विचारोत्तेजक और सारगर्भित है। त्रिलोचन के कवि कर्म पर आधारित संदीप जायसवाल का लेख बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अलावा प्राचीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर डॉ. राज किशोर पाण्डेय का लेख, भारतीय संस्कृति पर शर्वेश पाण्डेय का लेख बेहद विश्लेषणपरक और मूल्यवान हैं। पूर्वोत्तर के सामयिक यथार्थ को दर्शाती रीतामणि वैश्य की कहानी 'पतंगा' भी अच्छी लगी। कविताएँ और गजलों ने भी ध्यान आकृष्ट किया। सच कहा जाय तो यह पत्रिका अपने समय और समाज की यात्रा है। पत्रिका नई उचाईयों को निरंतर छुए, इस हेतु अशेष शुभकामनाएँ।

उज्ज्वल आलोक, शोधार्थी,
237, साबरमती छात्रावास, जे.एन. यू. नई दिल्ली

डॉ स्मिता मिश्र, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

हिन्दी के नए तेवर गढ़ता मीडिया

डॉ. स्मिता मिश्र

पहले बाइलाइन पर संवाददाता का नाम यदा-कदा तब दीखता था जब स्टोरी एक्सक्लूसिव हो, वरना विशेष संवाददाता या ब्यूरो रिपोर्ट जैसी औपचारिकता के साथ खबरे निपट जाती थीं। ये अनाम चेहरे प्रायः अज्ञात ही रह जाते थे। सम्पादकीय पृष्ठ पर अवश्य लेखकों के नाम आते थे प्लेकिन अब सब बदल गया है।

कबीर ने भाषा बहता नीर है कहकर स्पष्ट किया था कि भाषा एक समाज सापेक्ष क्रिया है। जैसे जैसे समाज बदलता है, वैसे-वैसे भाषा में बदलाव आता जाता है, अतः परिवर्तनशील समाज में भाषा का रूप भी विकासात्मक होता है। हिंदी भाषा के लगभग एक हजार वर्ष के विकास में बहुत से पड़ाव आये और इन तमाम पड़ावों को पार करते हुए नए नए रूप, भंगिमाएं लेती हुई जनभाषा हिंदी 21वीं सदी में नई भूमिकाएं ग्रहण कर रही है। यह भाषा कड़ी बोली प्रदेश से पनप कर और मानकीकृत होकर अपनी सीमा को पार कर क्षेत्र निरपेक्ष और विभिन्न तकनीकी कार्य क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी है, जिसमें मीडिया प्रमुख है। आज भाषा दृश्य श्रव्य, कम्प्यूटर आदि के द्वारा एक व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में उल्लिखित है कि हिंदी का विकास इस भावना के साथ किया जाये कि वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, शब्दों का विकास ऐसे हो कि हिंदी सभी भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सके। हम यह पाते हैं कि हिंदी की इसी सामासिक संस्कृति को उजागर करने में मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय मीडिया पिछले कुछ दशकों से संक्रमण के दौर से गुजरा है। राजभाषा हिंदी के रूप में हिंदी ने अपनी पहचान बनायी की नहीं, यह तो शोध का विषय हो सकता है किन्तु यह तय है कि मीडिया में हिंदी ने अत्यन्य ऊंची छलांग लगायी है। पत्रकारिता, जनसंचार, जन माध्यम इत्यादि जैसे शब्दों को अपने में समाहित कर अंग्रेजी से आया शब्द मीडिया अब हिंदी का अपना शब्द बन गया है, जिसमें प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सिनेमा, विज्ञापन, न्यू मीडिया आदि सभी शब्द शामिल हो जाते हैं। हिंदी पत्रकारिता का प्रश्न राष्ट्रभाषा और खड़ी बोली के विकास से भी सम्बंधित रहा है। हिंदी पत्रकारिता के भाषा विश्लेषण के माध्यम से हिंदी भाषा के विकास को समझा जा सकता है। प्रथम हिंदी समाचार-पत्र उदन्त मार्तंड (1826) से लेकर आजतक भिन्न भिन्न भाषिक परिवेश के पत्रकारों ने अखिल भारतीय हिंदी का स्वरुप निर्मित किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने जहाँ हिंदी को मानकीकृत रूप दिया, वहीं प्रेमचंद ने हिन्दुस्तानी शैली को सर्व ग्राह्य बनाया, बाबुराव विष्णु पराड़कर ने दैनिक पत्र 'आज' के सम्पादन के द्वारा हिंदी की पारिभाषिक सम्पदा को बढ़ाया। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता में अगये ने राजनितिक समीक्षा एवं समाचार विवेचन की शैली को विकसित किया, वहीं धर्मवीर भारती ने रंगमंच, यात्रा वृत्तांत, डायरी आदि विधाओं को पत्रकारिता से जोड़ा। इस समय हिंदी में नए-नए शब्दों का प्रवेश होता चला गया, तमाम अंग्रेजी शब्दों का हिंदी अनुवाद आया, नए शब्द गढ़े गए, क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक अभिव्यक्तियाँ भी हिंदी पत्रकारिता का अंग बनती गयी। हिंदी एवं अंग्रेजी समाचार पत्रों का इतना स्तरीय रूप हो गया कि वे भाषा शिक्षण के माध्यम बनने लगे। एक बड़ा पाठक वर्ग भाषा संस्कार के लिए अखबार पढने लगा, इसलिए समाचारों भाषा साहित्यिक होती थी। हैडलाइन में कौशल के साथ जटिल वाक्यों का भी प्रयोग होता था, किन्तु पिछले दो दशकों में समाचार की भाषा में भारी बदलाव आया। सूचना क्रांति ने भारतीय जीवन शैली पर भारी प्रभाव डाला। समाज बदला तो भाषा बदली और मीडिया भी बदला। आज मीडिया की हैडलाइन कलात्मक न होकर प्रत्यक्ष होने लगी है, कई कई सूचनाएँ देने की प्रवृत्ति बढ़ी है। परन्तु कुछ अखबार जैसे नवभारत टाइम्स अंग्रेजी और हिंदी के शब्दों को बहुतायत में मिलकर हैडलाइन देता है या समाचार बनाता है। जिन शब्दों के हिंदी शब्द उपलब्ध हैं उनके अंग्रेजी शब्दों को लेने का तर्क समझ नहीं आता है। वही जनसत्ता समाचार पत्र ने स्व प्रभाष जोशी के सम्पादन कार्य से स्तरीय भाषा का प्रयोग कर विशिष्ट पहचान बनायीं।

पहले बाइलाइन पर संवाददाता का नाम यदा-कदा तब दीखता था जब स्टोरी एक्सक्लूसिव हो, वरना विशेष संवाददाता या ब्यूरो रिपोर्ट जैसी औपचारिकता के साथ खबरे निपट जाती थीं। ये अनाम चेहरे प्राय: अज्ञात ही रह जाते थे। सम्पादकीय पृष्ठ पर अवश्य लेखकों के नाम आते थे। लेकिन अब सब बदल गया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रभाव से अब समाचारों में बाइलाइन ज्यादा दिखने लगी है, सम्पादकीय पृष्ठ पर लेखक की फोटो आने लगी है। रेडियो - दूरदर्शन प्रारंभ से ही सरकारी नियंत्रण में रहे हैं, इसलिए भाषा-उच्चारण और तथ्यों की शुद्धता पर हमेशा से बल रहा। भाषा औपचारिक और लिखित भाषा के करीब ही रही। किन्तु निजी फ.एम्. और समाचार चैनलों के आगमन से भाषा का अनौपचारिक रूप सामने अत है। अधिकाधिक दर्शकों और श्रोताओं को आकर्षित करने की होड़ में भाषा श्लील-अश्लील, भद्र-अभद्र, मूल्य मूल्यहीनता के प्रश्न बहुत पीछे छूट गएप्वर्ज्य विषय उन्मुक्त भाषा के साथ मुखर होने लगे। ग्लोबल विषय और

भाषा दोनों लोकल के साथ जुड़कर अभिव्यक्ति की प्रमुख शैली बन गए।

सन 2000 में आजतक समाचार चैनल के आगमन से समाचार रिपोर्टिंग की पूरी शैली बदल गयी। एंकर की भाषा-शैली हो या फिर घटना स्थल से रिपोर्टर की भाषा-शैली, एक आक्रामकता सी आ गय हो। जिस आक्रामक स्शैली का अविर्भाव आजतक से हुआ उससे भारतीय दर्शक चकित से रहे गए। दर्शक अभी तक दूरदर्शन की बंधी बंधाई सरकारी शैली की रिपोर्टिंग देख रहे थे, आजतक ने न केवल उसे बदला बल्कि अंग्रेजी वर्चस्व को तोड़कर हिंदी मीडिया के लिए जगह बनायीं। आजतक की सफलता से प्रभावित होकर अन्य हिंदी समाचार चैनल शुरू हुए। उन्होंने आजतक के फार्मूले को इतना प्रयोग किया कि वह आज घिस गया। पहले समाचार का अर्थ होता था किसी कार्यक्रम का उदघाटन भाषण देते राजनीतिज्ञ लेकिन आज समाचार का अर्थ है हो गया है अपनी निजी समस्यों को सार्वजानिक करते, एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाते आमो-खासखुफिया कैमरे, सेक्स स्कैंडल आदि पत्रकारिता से अभिन्न रूप से जुड़ गए हैं। अंग्रेजी, क्षेत्रेय सभी प्रकार की शब्दावली, मुहावरे आते चले गए, भाषा की वर्तनी मनमाने ढंग से प्रयोग की जाने लगी, बिम्बात्मक भाषा के स्थान पर उघाड़ू और भद्दी भाषा भी आ गयी प्एक एक पंक्ति की सूचना को स्फीति दे कर 4-5 मिनट के समाचार बनने लगेके कारण शब्दों में लफ्फाजी आ गयी, सूचना का स्थान सनसनी ने ले लिया। तमाम विदेशी कार्यक्रम हिंदी या भारतीय भाषाओं में डब होकर आने लगे और हिंदी को अत्यंत समृद्ध किया।

खेल और फिल्मी पत्रकारिता ने भी हिंदी में नई अभिव्यक्तियाँ और व्यंजनायें जोड़ी। अन्य जनमाध्यमों की अपेक्षा सिनेमा की भाषा आम आदमी की अभिव्यक्ति के नजदीक होती है, जहाँ छायांकन, ध्वनि, मुद्रण, नृत्य निर्देशक आदि अनुदित किये गए, वहीं शूटिंग, डबिंग, लोकेशन आदि यथावत अंग्रेजी से ग्रहण कर लिए गए। सिनेमा ने जहाँ प्रचलित मुहावरे लिए, वहीं नए मुहावरे भी गढ़े-

मर्द को दर्द नहीं होता जो दर गया, सो मर गया सिंह इज किंग खेलकूद पत्रकारिता ने भी अंग्रेजी के शब्द अनुदित किये टाइटल खिताब, सेंचुरी शतक, तो कहीं ध्वन्यात्मक परिवर्तन किये कैप्टेन कप्तान आदि। बहुत सारे तकनीकी शब्द ज्यों के त्यों ले लिए जैसे स्लिप, मिड-ऑन, एथलीट, रन, लेन आदि। युद्ध जनित और हिंसक शब्द बहुतायत में प्रयुक्त होने लगे धोनी की सेना अफ्रीका में ढेर, भारत पाक युद्ध आज आदि। हिंदी को व्यावसायिक जगत की भाषा से जोड़ने में विज्ञापनों का काफी हाथ है। भारत में आर्थिक उदारीकरण अर्थव्यवस्था के कारण आई बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने पाया कि हिंदी ही ऐसी भाषा है जो भारत में एक बड़ा बाजार उपलब्ध करा सकती है। इसलिए जो विज्ञापन अंग्रेजी में आता है उसे डब करके हिंदी में भी चलाते हैं या उसका स्लोगन हिंदी में कर देते हैं जैसे टेक-केयर का 'अपना ख्याल रखना' (गर्निएर नाईट क्रीम)

पंचलाइन में अंग्रेजी शब्दों को जोड़ना भी एक मुख्य प्रवृत्ति है यही है राईट चॉइस बेबी, कुछ तो है एक्स्ट्रा, अनबोक्स जिन्दगी। इसी के साथ विज्ञापनों ने ऐसे वाक्यांश भी दिए जोकि कलात्मक भी हैं और सूचनात्मक भी जैसे - जिन्दगी के साथ भी और जिंदगी के बाद भी (LIC), हक से मांगो (प्रियागोल्ड बिस्किट), बस दो बूँद जिंदगी की (पोलियो से सुरक्षा), ये अन्दर की बात

है (रूपा बनियान), पहले इस्तेमाल करें -फिर विश्वास करें (घडी डिटर्जेंट)

नई सूचना क्रान्ति से दुनिता ग्लोबल विलेज में तब्दील हो गयी और हम विश्व नागरिक में। कोम्पुटर इन्टरनेट और मोबाइल ने भौगोलिक दूरियां मिटा दी। सूचना की इस 'त्वरित संचार क्रांति' में हिन्दी अनुपस्थित नहीं रही। शुरुआत में इन्टरनेट हिंदी को रोमन लिपि में लिखा जाता था और रोमन में ही हिंदी सामग्री डाली जा रही थी। देवनागरी लिप में हिंदी सामग्री डालने में तकनीकी दिक्कतें थी, जिसे कुछ हद तक सुषा और कृतिदेव फॉण्ट ने दूर किया। हिंदी के पहले वेब पोर्टल 'वेब दुनिया' ने अपने फॉण्ट बनाये, फिर अलग-अलग समाचार साईट अपने-अपने फॉण्ट बनाने लगी। हिन्दी फांट और की-बोर्ड की समस्या के कारण पहले बहुत कम लोग इससे जुड़े। पर गूगल ट्रांसलिटरेशन के आ जाने से यूनिकोड फांट ने हिन्दी एवं दूसरे भाषाई ब्लॉगरों के लिए न्यू मीडिया का रास्ता खोल दिया। पहले इन्टरनेट की हिंदी सामग्री का उपयोग करने के लिए बहुत जुगाड़ करने पड़ते थे। इसलिए इन्टरनेट पर हिंदी का प्रयोग जोर नहीं पकड़ पा रहा था। इन दिक्कतों को देखते हुए यूनिकोड को समाधान के रूप में लाया गया। यूनिकोड के आगमन से हिन्दी की जिस नई धारा का जन्म हुआ उसने सभी भाषाई प्रतिबद्धताओं को तोड़ डाला है। अभी तक लोग कम्प्यूटर और अंग्रेजी का ही संबंध जोड़ते थे किन्तु यूनिकोड (यूनिवर्सल कोडिंग) फांट के द्वारा हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाएं भी कम्प्यूटर पर अपनी सहज उपस्थिति दर्ज कराने लगीं। हिन्दी ई-पत्रकारिता, हिन्दी ब्लॉगिंग एवं वेबसाइट को बहुत बल मिला। आम व्यक्ति के लिए अपनी भाषा में टाइप कर इंटरनेट पर डालना 'बायें हाथ का खेल' हो गया। यूजर फेंडली तकनीक का साथ मिल जाने से हर आमों खास हिंदी में ब्लोगिंग या सोशल मीडिया पर पोस्टिंग हिंदी में करने लगा। अपलोड, डाउनलोड हाइपरलिंक, पोस्टिंग, सोशल मीडिया, हैश टैग, वीडियो, ऑडियो, टेक्स्ट जैसे अनेकानेक शब्द हिंदी ने पचा लिए हैं।

एक बड़ा भारी संकट न्यू मीडिया के कारण आया-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दुरुपयोग। समस्या यह है कि ब्लॉग हो या सोशल मीडिया में अभिव्यक्ति करने वाले विद्वान अपने निजी विचारों को रिपोर्ट अथवा सृजनात्मक भाषा में तब्दील नहीं करते। परिणाम स्वरूप अभद्र भाषा, अश्लीलता या इकतरफा मत बढ़ता जा रहा है। कोई भी कुछ भी सामाजिक जिम्मेदारी को अनुभव किए बिना लिख देता है। पारस्परिक द्वेष को गाली-गलौज के स्तर पर आकर सोशल मीडिया में साझा कर रहे हैं। यह स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। सच है भाषा बहता हुआ नीर ही है इसलिए नए समय की नई तकनीक में नए रूप ग्रहण करेगी, कहीं उथली होगी तो कहीं गहरी भी होगी। फिर भी इतना तो तय है कि हिंदी कहीं भी थमेगी नहीं, नए तेवर और नए रूप में भारत की पहचान बनती चलेगी।

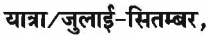

डॉ. रमेश बर्णवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

कितनी आमफ़हम है अखबारों की हिन्दी

डॉ. रमेश बर्णवाल

हिन्दी-उर्दू का दो आब-हिन्दी अखबारों में उर्दू शब्दों या कहें अरबी-फारसी स्त्रोत के शब्दों के व्यापक प्रयोग को देखकर किसी को लग सकता है कि यह वही हिन्दुस्तानी है जिसकी परिकल्पना महात्मा गाँधी ने की थी और अपने भाषणों में इसे अमल में भी लाया था।

हिन्दी अखबारों की भाषा में क्या ख़ास है? पत्रकारिता पढ़ाते समय यह बताया जाता है कि इसकी भाषा आम बोलचाल की या इसके क़रीब होनी चाहिए जिससे उच्चशिक्षित व्यक्तियों के अलावा साधारण साक्षर व्यक्ति भी इसे पढ़कर समझ सके। यह भी कहे जाने का आम चलन है कि इसमें आमफ़हम शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ध्यान दें, 'आमफ़हम लफ्ज़ों' या 'अल्फाज़' नहीं कहा जाता। हिन्दी अखबारों की भाषा के संदर्भ में इस बात का अपना महत्त्व है जिसे हम आगे देखेंगे।

यह आमफ़हम होना क्या होता है? आमफ़हम यानी आम समझ में आने वाली चीज़ या जो आम लोगों को समझ में आए।

अब तक के अनुभव बताते हैं कि लिखित हिन्दी और बोलचाल की हिन्दी में अंतर रहा है। आमफ़हम होने की बात करें तो लिखित हिन्दी में आप आमफ़हम हिन्दी के करीब जा सकते हैं, लेकिन आमफ़हम होने को पूरी तरह निभा पाना साहित्य में, विशेषकर ललित साहित्य में हमेशा से एक चुनौती रहा है। बात पत्रकारिता की करें तो पत्रकारिता भी आमफ़हम होने का दावा ही कर सकती है, इस

दावे को हक़ीक़त में बदल पाना व्यवहार में पूरी तरह संभव नहीं हो पाता है। हिन्दी अखबारों की बात करें तो इसके कारण हैं - शब्दों के स्रोत, ख़बर लिखने की स्थितियाँ और ख़बरों के संदर्भ। अखबारों की भाषा इनसे मुक्त नहीं होती बल्कि इन्हीं से बनती-बिगड़ती है। हम पाते हैं कि हिन्दी अखबारों की भाषा साहित्य और राजकीय प्रयोग की भाषा से अलग तीसरे प्रकार की भाषा है। इसमें साहित्यिक युक्तियाँ मिलती हैं, राजकीय-प्रशासकीय हिन्दी का भी आधार ग्रहण किया जाता है, लेकिन साथ ही एक ऐसा दोस्तानापन भी होता है जो भाषा को खुलने की पूरी छूट देता है, इसे बेधड़क और बहुत हद तक अनौपचारिक होने में मदद करता है जिससे यह बोलचाल की हिन्दी के 'करीब' जाती है।

इसके अलावा समसामयिकता-तात्कालिकता का आग्रह तथा शीर्षकों की संक्षिप्तता और अनोखेपन का आग्रह भी इसे एक ऐसा पत्रकारीय तेवर प्रदान करता है जो भाषा के अन्य प्रयोगों में नहीं मिलता। पत्रकारिता में भाषिक युक्तियों के कुछ ऐसे रूप मिलते हैं जो निजी रूप से पत्रकारिता की विशेषताएँ हैं। लेकिन यहां हम हिन्दी अखबारों में शब्द-प्रयोग या शब्द-चयन की चर्चा तक ही खुद को सीमित रखेंगे।

हिन्दी उर्दू का दोआब - हिन्दी अखबारों में उर्दू शब्दों, या कहें अरबी-फारसी स्रोत के शब्दों के व्यापक प्रयोग को देखकर किसी को लग सकता है कि यह वही हिन्दुस्तानी है जिसकी परिकल्पना महात्मा गाँधी ने की थी और अपने भाषणों में इसे अमल में भी लाया था। लेकिन महात्मा गाँधी के हिन्दुस्तानी के प्रयोग की बानगी देखने से पहले हिन्दी अखबारों में उर्दू शब्दों के प्रयोग के कुछ उदाहरण देखें। हिन्दी के तत्सम् शब्दों के साथ ये ऐसे गलबहियाँ डाले सामने आते हैं कि इनके दो अलग स्रोत से होने पर ध्यान ही नहीं जाता। ये हमारी पाठकीय आदत में इस कदर शुमार हो चुके हैं। लेकिन ऐसे मौकों की भी कमी नहीं जब हिन्दी के तत्सम और उर्दू के शब्द एक साथ प्रयुक्त होने पर अभीष्ट अर्थ देते हुए भी भाषिक रूप से संवेदनशील व्यक्ति को बेमेल लग सकते हैं।

चिरंतन गरीबी, आक्रामक पसमंजर, नीतिगत फैसला, खरा संदेश, व्यक्तिगत वफादरी, आंतरिक मामला, ठोस कार्रवाई, पुख्ता संकेत, पुख्ता तंत्र, पुख्ता प्रमाण, अंतर्राष्ट्रीय रसूख, आर्थिक वजूद, प्राथमिकी दर्ज, निर्णायक कदम, आतंकवादी खतरे, वृद्धि दर, विशेष जोर, आतंकी हमले, सालाना मूल्य इत्यादि कुछ ऐसे ही शब्द-युग्म हैं जो हिन्दी समाचारपत्रों में प्रयुक्त होकर हिन्दी-उर्दू की निकटता को दर्शाते हैं।

मुल्तवी करने का निर्णय, वार्ता का ब्यौरा, सूत्रों के मुताबिक, घटनाक्रमों के मद्देनजर, पद से इस्तीफा, निष्कासन का ऐलान, परियोजना का मुआयना, निर्माण की ख्वाहिश इत्यादि भी हिन्दी समाचारपत्रों के ऐसे ही प्रयोग हैं जिनमें हिन्दी के तत्सम और उर्दू के शब्दों की संयुक्त उपस्थिति देखी जा सकती हैं। और ये अपवाद नहीं है बल्कि हिन्दी दैनिकों की यही आम भाषा है और हर

दैनिक में ये प्रयोग देखे जा सकते हैं। प्रयोग करने वाले बड़ी सहजता से प्रयोग कर रहे हैं और पाठक पढ़ भी रहे हैं। तो क्या इसे हिन्दी-उर्दू मेल का आदर्श उदाहरण माना जाए? लेकिन यहाँ ठहरना पड़ेगा और पूछना पड़ेगा कि समाचारपत्रों में ऐसे सद्भावपूर्ण बेखटके प्रयोगों की बहुलता के बावजूद इनके पाठकों के आम व्यवहार में ये प्रयोग इसी तरह लोकप्रिय क्यों नहीं हो पाए है? स्वयं रिपोर्ट लिखने वाले हिन्दीभाषी पत्रकारों की आम बोलचाल की भाषा के ये स्वाभाविक अंग क्यों नहीं बन पाए हैं?

आंतरिक मामला, निर्णायक कदम, नीतिगत फैसला, वृद्धि दर, आतंकवादी खतरे, आतंकी हमले, प्राथमिकी दर्ज जैसे प्रयोगों पर निश्चय ही अलग से ध्यान नहीं जाता। लेकिन क्या चिरंतन गरीबी, आक्रामक पसमंजर, आर्थिक वजूद, अंतर्राष्ट्रीय रसूख, सालाना मूल्य जैसे प्रयोग भी इतने ही सहज मालूम पड़ते हैं? तो फिर हम आम बोलचाल में ऐसे क्यों नहीं बोलते?

इसमें कोई संदेह नहीं कि ये हमारे बोलचाल के शब्द-प्रयोग नहीं हैं बल्कि ये हिन्दी अख़बारों और पत्रकारों के अपने प्रयोग हैं जो बहुत हद तक पत्रकारिता के तात्कालिक उद्देश्यों को पूरा करते हैं। 'आक्रामक पसमंजर' शब्दयुग्म में आए 'पसमंजर' शब्द को लें, यह हिन्दी भाषी पाठकों के लिए 'आमफ़हम' शब्द नहीं हैं और 'आक्रामक' शब्द के साथ इसका प्रयोग तो और भी दुर्लभ है।

यहाँ एक रिपोर्ट के वे अंश प्रस्तुत हैं जिनसे उपरोक्त उदाहरणों में से कुछ लिए गए हैं-

'जरदारी ने माना, कश्मीर में 'सेनानी' नहीं आतंकी...उनका यह भी मानना था कि पाकिस्तान के लिए भारत कभी खतरा नहीं रहा और मुल्क की मौजूदा लोकतांत्रिक सरकार भारत के बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय रसूख से बिल्कुल भी विचलित नहीं है। ... यह पूछे जाने पर कि क्या वह भारत के साथ मुक्त व्यापार समझौता करने पर विचार करेंगे, जरदारी ने इसे स्वागतयोग्य और ऐतिहासिक विचार करार दिया। उन्होंने कहा, हम जैसे मुल्कों के आर्थिक वजूद के लिए कोई और रास्ता है भी नहीं। हमें सबसे पहले अपने पड़ोसियों से व्यापारिक संबंध बनाने चाहिए।

जरदारी ने इस कड़ी में ऐसे पाकिस्तानी सीमेंट कारखानों के निर्माण की ख्वाहिश जताई जो भारत के वृहद ढांचागत क्षेत्र की जरूरतें पूरी कर सकें।

हिन्दुस्तान, दिल्ली संस्करण, 6 अक्टूबर 2008

यह रिपोर्ट प्रेट्र ट्रस्ट ऑफ इंडिया समाचार एजेंसी से ली गई जिसे हिन्दी में अनुदित किया गया है और 'हिन्दुस्तान' में इसे अपने अनुसार संपादित भी किया गया होगा। अनुमान किया जा सकता है कि उपरोक्त चिन्हित प्रयोग अनुवाद की प्रक्रिया से उत्पन्न हुए हैं। ये भाषा के 'फर्स्ट हैंड' प्रयोग नहीं है बल्कि रूपांतिरत होकर प्रस्तुत हुए हैं और उर्दू के मुल्क, रसूख, वजूद जैसे शब्द स्वाभाविक रूप से इसलिए भी आए हो सकते हैं कि यह रिपोर्ट पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के

वक्तव्यों पर आधारित है। अगर यह रिपोर्ट भारतीय प्रधानमंत्री के बयान पर आधारित होती तो ये प्रयोग अपेक्षाकृत अटपटे लगते। फिर भी यह पूरी रिपोर्ट में नहीं निभ सका है, निश्चय ही रिपोर्ट लेखक का ऐसा आग्रह भी नहीं रहा होगा। यही कारण है कि इसी रिपोर्ट के उपरोक्त अंशों में ही 'रसूख' के साथ 'अंतर्राष्ट्रीय', 'वजूद' के साथ 'आर्थिक' और 'ख्वाहिश' के साथ 'निर्माण' शब्द भी आ गए हैं। निश्चय ही हिन्दी के इन तीनों ही तत्सम शब्दों का कोई बेहतर विकल्प नहीं रहा है। यही नहीं उपरोक्त अंशों में ही 'विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र और सबसे प्राचीन लोकतंत्र', 'वृहद ढांचागत क्षेत्र' और 'व्यापारिक संबंध' जैसे प्रचलित तत्सम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

स्पष्ट है कि रिपोर्ट के उपरोक्त अंशों में आए उर्दू-हिन्दी शब्दयुग्म पत्रकारिता की टकसाल से निकले है।

कई बार ऐसा होता है कि शीर्षक में तो उर्दू शब्द और ख़बर में उसी का पर्याय हिन्दी तत्सम। दैनिक जागरण के दिल्ली संस्करण से एक उदाहरण प्रस्तुत है – शीर्षक – 'छात्र व व्यवसायी समेत चार ने खुदकुशी की' और अंदर ख़बर का वाक्य – राजधानी में सोमवार को चार लोगों ने आत्महत्या कर ली।

शीर्षक में उर्दू शब्द 'खुदकुशी' और ख़बर के पहले ही वाक्य में इसके लिए हिन्दी तत्सम 'आत्महत्या'!

दैनिक जागरण के इसी अंक से एक दूसरा उदाहरण लें –

शीर्षक – चोरी गई कार बरामद, सीटें रक्तरंजित और ख़बर का वाक्य – ''कार के अंदर का डेस्कबोर्ड टूटा हुआ है और सीटें खून से सनी हुई हैं।'' क्या आपको ये प्रयोग अचंभे में नहीं डालते? शीर्षक में हिन्दी तत्सम 'रक्तरंजित' और अंदर 'खून से सनी'। क्या कारण हैं ऐसे प्रयोग के? जवाब है – पत्रकारिता, पत्रकारिता की परिस्थितियाँ, पत्रकारिता की अपेक्षाएँ। इन्हीं में कारण ढूंढने होंगे, सामान्य भाषा-प्रयोग मात्र में नहीं।

पहले उदाहरण में दो स्थितियाँ हो सकती हैं। (1) ख़बर संवाददाता या एक से अधिक संवाददाताओं द्वारा लाई गई क्योंकि वाक्य से ही पता चलता है कि ख़बर एक जगह की नहीं बल्कि राजधानी की अनेक जगहों की है। इसी पेज की कुछ दूसरी ख़बरों को उपयुक्त शीर्षक देने के दौरान इस ख़बर का भी उपसंपादक ने ख़बर के अनुसार एक उपयुक्त शीर्षक दे दिया जिसमें ख़बर की मुख्य बातें आ जाती हों और आत्माहत्या को अपनी पसंद के मुताबिक़ ख़ुदकुशी लिख दिया। शीर्षक में 'ख़ुदकुशी' लिखने का आम चलन भी है। 'आत्महत्या' से समरूपता पर उसने ध्यान नहीं दिया।

(2) समाचारपत्रों में यह सामान्य बात है कि ख़बर पहले टाईप हो जाती है और बाद में शीर्षक दिए जाते हैं। शीर्षक देते समय लेखक ने टाईप की हुई सामग्री के शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं किया। ख़बर छोटी मानकर उसने बहुत माथापच्ची किए बगैर 'खुदकुशी की' शीर्षक दे दिया।

'खुदकुशी' उसे आत्महत्या' की तुलना में पत्रकारिता के तेवर के ज्यादा अनुरूप लगा। शीर्षक में यह 'आत्महत्या' से जगह भी कम लेता है।

दूसरे उदाहरण में शीर्षक में घोर तत्सम 'रक्तरंजित' प्रयोग किया गया है। ऐसा कम होता है। लेकिन पत्रकारिता की दृष्टि से देखें तो शीर्षक में इसकी जगह 'खून से सनी' का प्रयोग बेहतर विकल्प नहीं होता। शीर्षक में 'रक्तरंजित' 'सीटें' का विशेषण है, जबकि 'खून से सनी' में क्रिया होने की संभावना हैं। इसके अलावा ये तीन शब्द शीर्षक में जगह भी ज्यादा घेरते। ग़रज़ यह कि ये शब्द-चयन अनायास नहीं बल्कि पत्रकारिता की दृष्टि से सप्रयोजन हैं।

ऐसी ख़बरें ध्यान से पढ़ें तो दुर्घटना में आम लोगों की 'मौत' ही होती है, मृत्यु नहीं। युवक की पीटकर 'हत्या' ही होती है, खून नहीं। ख़बरों के भीतर ज्यादातर लोग 'महसूस' ही करते हैं, 'अनुभव' कम करते हैं। राष्ट्रप्रमुखों का काफ़िला 'रवाना' ही होना होता है, 'प्रस्थान' नहीं करता। राष्ट्रप्रमुख रूढ़ हो गए हैं। दूसरे देशों की 'यात्रा' ही करते हैं, 'सफ़र' नहीं करते। ये सब प्रयोग लगभग निश्चित हैं। उर्दू के शब्द हों या हिन्दी के तत्सम शब्द।

यहां हिन्दी समाचारपत्रों से उर्दू शब्दों के जो वास्तव में अरबी-फारसी स्रोत के शब्द हैं, कुछ और प्रयोग दिए जा रहे हैं-

लामबंदी धरी की धरी रह गई, झूठी कॉल से मासूम हलकान, मुसीबत का ताजा सबब, जवां देश के जवां पासबां, तकनीकी सुधारों की सिफारिश, पत्र ने मामला पेचीदा बना दिया, बाज आना चाहिए, हामी का इंतज़ार, ज्यादा माकूल हैं, सरकार के खिलाफ पैदा आक्रोश, तालिबान कमांडरों ने धमकी दी, मुल्तवी करने का निर्णय, वादी में जम्हूरियत का जश्न, हंगामा हुआ और कार्यवाही स्थगित, व्यक्तिगत वफादारी को अहमियत इत्यादि। इनमें से अधिकतर उर्दू शब्द हिन्दी के अपने शब्द बन गए हैं। (हिन्दी के शब्दकोषों में कुछेक को जगह भी मिली है, बहुत को मिलनी बाकी है।) 'सिफारिश' का अर्थ देने के लिए हिन्दी का कोई दूसरा शब्द तुरंत नहीं सूझता। इसका पर्यायवाची शब्द अनुशंसा आम व्यवहार में नहीं आ पाया है। 'मद्देनज़र' भी पत्रकारिता के लिए ऐसा ही शब्द है। 'ध्यान में रखते हुए' या ध्यान में रखें तो' की तुलना में यह बहुत छोटा शब्द भी है जो जगह कम लेता है।

इसी तरह कुछ तत्सम शब्दों के लिए भी उर्दू पर्यायों का प्रयोग नहीं किया जाता और ये राजकीय-प्रशासकीय शब्दावलियों के अलावा हैं। यात्रा, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता आदि ऐसे ही शब्द हैं। 'आतंकवाद' के लिए 'दहशदगर्दी' और 'साम्प्रदायिकता' के लिए 'फ़िरक़ापरस्ती' का ख़बरों में बहुत कम प्रयोग होता है। आम बोलचाल में भी हिन्दीभाषियों में पहले वाले शब्द ही ज्यादा लोकप्रिय हैं।

लेकिन ऊपर के उदाहरणों से ही पासबां, हलकान, लामबंदी, माकूल, जम्हूरियत जैसे शब्दों को देखें तो ये हिन्दीभाषी लोगों की आम-बोलचाल की भाषा में शामिल नहीं हैं, न ही ये

आमफ़हम हैं। तथ्य यह है कि आम लोगों में से अधिकतर को इनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं पता। ख़बर के संदर्भ और अख़बार पढ़ने के अभ्यास के कारण वे अनुमान द्वारा अर्थ तक पहुंचते हैं।

इसके बावजूद हिन्दी अख़बारों में ये शब्द क्यों प्रयुक्त किए जा रहे हैं? क्या हिन्दी-उर्दू के मेल से बनी हिन्दुस्तानी को पाठकों तक पहुंचाने का आग्रह इसके पीछे काम करता रहा है?

पत्रकारिता की दृष्टि से देखें तो दो-तीन कारण समझ में आते हैं। एक, उर्दू के शब्दों से ख़बरों के शीर्षक ज्यादा वज़नदार बनाए जाते हैं, कई बार नएपन और असाधारणता के कारण वे पाठकों का ध्यान तुरंत आकर्षित करते हैं। हलकान, ऐलान जैसे बहुत सारे उर्दू शब्दों के अंतिम अक्षर में मात्रा का न होना भी इसका एक कारण हो सकता है। यही कारण है कि 'आशा' की जगह शीर्षकों में 'आस' और 'उम्मीद' का ही प्रयोग होता है। कई बार तुकबंदी और अनुप्रास के आग्रह के कारण भी उर्दू के शब्द आते हैं। कभी-कभी ये देशकाल के आग्रह के कारण भी आते हैं जिसे हम संदर्भ कह सकते हैं। 'जम्हूरियत का जश्न' वाला उदाहरण लें। ख़बर का पूरा शीर्षक है - 'वादी में जम्हूरियत का जश्न'। इस ख़बर में जम्मू-कश्मीर के विधानसभा चुनाव में आतंकवादियों और अलगाववादियों की धमकियों के बावजूद आम लोगों की उत्साहपूर्ण भागीदारी का वर्णन है। जम्मू कश्मीर की वादियां अपनी खूबसूरती के लिए मशहूर रही हैं। दूसरी बात, जम्मू-कश्मीर मुस्लिम बहुल राज्य है। तीसरी बात, चुनाव में लोगों की उत्साहपूर्ण भागीदारी। तो इस तरह शीर्षकों की भाषा ख़बर के संदर्भ से प्रभावित है। हरियाणा, उत्तर प्रदेश या पश्चिम बंगाल में यही चुनाव होने पर शीर्षक में 'जम्हूरियत' शब्द का प्रयोग अस्वाभाविक होता। फिर जम्हूरियत और जश्न में ज-ज का अनुप्रास भी आता है जो शीर्षक को आकर्षक बनाता है।

लेकिन हमेशा संदर्भ वाली बात ही नहीं होती। ख़बर के भीतर आने वाले उर्दू शब्दों के बारे में तो ख़ासकर। दरअसल गांधीजी ने हिन्दी के जिस हिन्दुस्तानी स्वरूप की संकल्पना दी थी और उससे अमल में भी लाया था उसका ख़ासा असर हिन्दी समाचारपत्रों की भाषा पर रहा है। गांधीजी जहां एक ओर मनुष्य, सत्याग्रह, जिह्वा, सर्वस्व, ऋणी, अनिवार्य, विक्षेप, स्वार्थवश, संयम जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग करते थे, वहीं साथ-साथ उन्हीं वाक्यों में अगरचे, ख़्वाह, हुकूमत, ज़हमत, बुज़दिल, ज़ाहिर, लफ़्जों, तफ़सील, ताल्लुक, शरीक जैसे उर्दू के आसान व प्रचलित तथा तमद्दुन, मिस्कीन, ताजिर, जनूबी जैसे कठिन या हिन्दी में अप्रचलित उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया करते थे। दक्षिण अफ्रीका के लिए अपनी प्रातःकालीन प्रार्थना सभा के बाद के भाषणों में उन्होंने कई बार 'जनूबी अफ्रीका' कहा है। ये भाषण आकाशवाणी से प्रसारित हुआ करते थे। 'हिन्दुस्तानी' चलाने के पीछे जो भावना रही, हिन्दी पत्रकारिता उसकी कद्र करती दिखाई देती है।

फिर वज़न की भी बात आती है। उर्दू के कुछ शब्द वज़नदार मालूम पड़ते हैं। लंबे समय तक शासन और शासकों की भाषा रहने के कारण फारसी और इसलिए उर्दू को भी एक ऊंचा दर्जा

हासिल रहा है। हिन्दी के कई साहित्यकार गोष्ठियों और आलोचनात्मक लेखन में हिन्दी के आसान विकल्प के रहते हुए कुछ उर्दू शब्दों का प्रेमपूर्वक प्रयोग करते हैं। मसलन अशोक वाजपेयी जनसत्ता के अपने साप्ताहिक स्तंभ 'कभी कभार' में 'महदूद' शब्द का जो कि 'सीमित' का पर्याय है, प्रयोग करते रहे। हिन्दी के नए-नए बनने वाले लेखकों में भी यह प्रवृत्ति आम है। साहित्यकार होने के बोध के साथ-साथ उनमें से कइयों की बोलचाल की शब्दावली में अक्सरहां, मुताल्लिक, मुतास्सिर जैसे शब्द दाख़िल होने लगते हैं। अभ्यास के बाद ये सहज लगने लगते हैं। हिन्दी के पत्रकारों के साथ भी ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। हाँ, उन्हें विशिष्टता की तुलना में संप्रेषणीयता का अधिक ध्यान रखना होता है। इसके अलावा मानक हिन्दी में कानून और प्रशासन के बहुत सारे शब्द अरबी-फारसी स्रोत के शब्द हैं और अख़बारों में धड़ल्ले से प्रयुक्त होते हैं। उनके लिए हिन्दी के ही शब्द देने या बनाने का आग्रह-दुराग्रह नहीं किया जाता। दरअसल हिंदी अख़बारों में भाषा का शुद्धतावादी दृष्टिकोण कभी हावी नहीं रहा। उन्हें मालूम है कि 'पेपर' या 'न्यूज़पेपर' के अलावा उसका दूसरा लोकप्रिय नाम 'अख़बार' है, समाचारपत्र नहीं।

लेकिन गौर से देखा जाए तो हिन्दी के सभी अख़बारों में हिन्दी के तत्सम शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया जाता रहा है, और उनमें से भी कई ऐसे शब्द हैं जो आमफ़हम नहीं कहे जा सकते, न ही वे आम हिन्दीभाषी पाठकों की बोलचाल के अंग बन सके हैं।

परिदर्शन, निकटस्थों, बहिर्गमन, पर्यवेक्षक आदि हिन्दी के शब्द हैं, ये सामान्य बोलचाल के शब्द नहीं हैं। और साधारण पढ़े-लिखे हिन्दी-भाषी को ध्यान में रखें तो इन्हें आमफ़हम नहीं कहा जा सकता। लेकिन हिन्दी समाचारपत्रों में ये शब्द आपको मिल जाते हैं।

प्रशासनिक पदों से जुड़े शब्द अधीक्षक, थानाध्यक्ष, आयुक्त, उपनिरीक्षक जैसे शब्दों पर भी गौर करें तो ये सबके लिए परिचित शब्द अवश्य हैं लेकिन बोलचाल में इनके अंग्रेजी पर्याय ही लोकप्रिय हैं। सर्वोच्च न्यायालय आदि का भी देखें तो इनके अंग्रेजी पर्याय ज्यादा लोकप्रिय हैं। हिन्दी समाचारपत्रों में बार-बार लिखे जाने पर बुरा भले लगे लेकिन हिन्दीभाषी पाठक भी 'सुप्रीम कोर्ट' ही ज्यादा बोलते हैं। केन्द्रीय जांच एजेंसी की जगह सीबीआई बोलते हैं, आरोपपत्र की जगह 'चार्टशीट' बोलते हैं। लेकिन अधिकतर हिन्दी समाचारपत्रों में 'आरोप पत्र तैयार किया' धड़ल्ले से लिखा जाता है।

परियोजनाओं, समीपवर्तियों, निलंबन, निष्कासन, उद्यमियों, गणनायक, लंबित, परिप्रेक्ष्य, अर्जित, आशय, अतिक्रमण, उत्पाद शुल्क, अक्षय ऊर्जा, आपूर्ति, आशान्वित, प्रतीकस्वरूप, अंततोगत्वा, सेवा कर, विचलित, आवक, पुष्टि, अवगत, आशातीत, दुर्लध्य खाई, जघन्य पाप, वित्तीय, प्रताड़ना, दुष्कर्म आदि-आदि तत्सम शब्दों की एक बहुत लंबी सूची बनाई जा सकती हैं जो आम बोलचाल में नहीं बरते जाते बल्कि उच्चस्तरीय लेखन में प्रयुक्त होते हैं और कुछ प्रशासनिक प्रयोजन के लेखन में।

'विकल्प' के लिए क्या है विकल्प – बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिनका कोई समर्थ विकल्प नहीं होता, इसलिए वे धड़ल्ले से प्रयुक्त होते हैं। वे उर्दू के हैं या हिन्दी तत्सम के इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता। अफ़वाह, मुद्दे आदि ऐसे ही शब्द है। स्वयं 'विकल्प' के लिए क्या है विकल्प?

कुकर्म, दुष्कर्म, घमासान और सूत्रों ने कहा है – 'दुष्कर्म' हिन्दी समाचारपत्रों में प्रचुरता से प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है। लेकिन पत्रकारिता की रंगत में ढलकर इसने अपना मूल अर्थ त्याग दिया है और यह अब सीमित होकर 'बलात्कार' के लिए रूढ़ हो चुका है। 'दुष्कर्म' पढ़ते ही 'बलात्कार' सूचित होता है। यह पत्रकारिता का ही कमाल है कि अब राजनीतिक दलों के भीतर या बीच होने वाले छोटे-मोटे मतभेदों के लिए भी 'घमासान' कह दिया जाता है। हिन्दी के समाचार चैनलों का वश चले तो वे हर बुलेटिन में 'घमासान-घमासान' करें। लेकिन यह प्रवृत्ति हिन्दी अख़बारों से ही चलकर वहां गई है। अब मतभेद, बयानबाजी आदि से पैदा हुए विवादों को 'घमासान' कह दिया जाता है। घमासान के वास्तविक अर्थ 'युद्ध' या 'भयंकर युद्ध' को हम याद रखें तो यह समझ सकते हैं कि 'घमासान' ख़बरों के शीर्षकों को सनसनीखेज बनाने के लिए प्रयुक्त होता है।

अजनबी का गृह-प्रवेश – अगर आप भाषा के प्रति संवेदनशील व्यक्ति हैं तो हिन्दी समाचारपत्रों में अंग्रेजी शब्दों के बढ़ते प्रयोग पर जरूर चौंक पड़ेंगे। इनके हिन्दी विकल्प क्या विलुप्त नस्लों की कोटि में जा गिरेंगे, आपको यह चिंता मथने लगेगी।

हिन्दी समाचारपत्रों में अंग्रेजी शब्द क्यों और कितने आ रहे हैं, क्या ये समाचारपत्रों की भाषा के आमफ़हम होने की राह में रोड़ा बन रहे हैं या उसे आमफ़हम बनाने की ग़रज़ से ही आ रहे हैं ये हमें देखना पड़ेगा। नवभारत टाइम्स जैसे प्रमुख हिन्दी दैनिक की तो घोषणा है कि यही बोलचाल की हिन्दी है। 2004 में इसने एफ.एम. रेडियो से यह प्रचारित किया। इसमें रेलवे स्टेशन की एक उद्घोषिका गाड़ी आने संबंधी सूचना तत्सम शब्दावली में देती है और इसके तुरंत बाद दूसरी उद्घोषिका की घोषणा अंग्रेजी मिश्रित शब्दावली और आकर्षक स्वर में होती है। यह दूसरा प्रकार ही आज की प्रचलित हिन्दी है और नवभारत टाइम्स इसी में अपने ख़बरें देता है, यह संदेश प्रचारित किया जाता है। नवभारत टाइम्स की अंग्रेजीमिश्रित हिन्दी ने एक लंबी बहस छेड़ दी। इस लेख में हम वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर और दिल्ली में हिन्दुस्तान के पूर्व स्थानीय संपादक प्रमोद जोशी जी के विचार प्रस्तुत करेंगे जो इस नए बदलाव की पहचान अलग-अलग ढंग से करते है। पहले हम देखें कि अंग्रेजी के शब्द किन रूपों में आते हैं और किन उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं?

टेरर, प्रेजिडेंट, लैंड माफिया, वेजिटेबल मार्केट, कमर्शल कॉम्पलेक्सेज, रेजिडेंशल कॉलोनी, कॉलोनाइजर, पार्टनर, स्क्वेय गज, फॉरेस्ट गार्ड, कस्टोडियन, प्लॉट अलॉटमेण्ड, डिवेलपमेंट, नोटिफिकेशन, लेवलिंग, रेवेन्यू रिकॉर्ड, डिप्टी कमिश्नर, गोल, रोल, सीरियल ब्लास्ट, अल्टीमेट, बैन, रेंज, रेस्पांस, फाइनेंसियल, कैपिटल, इकॉनॉमिक स्लो डाउन, जूलर्स, ब्राइट फ्यूचर,

गोल्ड, मैरिज सीजन, फैशन टिप्स, लिप्स, विंटर, हैंडसम, ट्रैंडी हेयर कट, हेयर स्पेशलिस्ट, इंटीरियर, एक्सटीरियर, प्रॉपर्टी इत्यादि-इत्यादि हिन्दी समाचारपत्रों में छपने वाली खबरों और फीचर सामग्री में आए कुछ अंग्रेजी शब्द हैं। प्रतिदिन के समाचारपत्र देखें, और अकेले नवभारत टाइम्स भी देखें तो यह सूची बहुत लंबी हो सकती है। नवभारत टाइम्स के साथ ख़ास बात यह भी है कि इसमें अंग्रेजी शब्द सही और मानक उच्चारण के अनुसार दिए जाते हैं। हिन्दी भाषियों में प्रचलित सामान्य उच्चारण के अनुसार नहीं। रेजिडेंशल, कमर्शल, डिवेलपमेंट, प्रेजिडेंट, एस्क्वेयर, रेवेन्यू, जूलर्स नवभारत टाइम्स में दिए गए रूप हैं जो उच्चारण की दृष्टि से सही भी है, लेकिन हिन्दीभाषी सामान्य पाठक इन शब्दों के रेसिडेंशियल, कमर्शियल, डेवलपमेंट, प्रेसिडेंट, स्क्वायर, रिवेन्यू, ज्वेलर्स उच्चारण वाले रूप से ही परिचित रहे हैं। वे जरूरत पड़ने पर इन शब्दों का इन्हीं रूपों में उच्चारण करने के अभ्यस्त रहे हैं।

यहां हिन्दी के विभिन्न दैनिकों से कुछ समाचारों के और फीचर आलेखों के भी ऐसे शीर्षक प्रस्तुत हैं जिनमें अंग्रेजी के शब्द आए हैं-

लिप्स पर फैशन टिप्स, बायोटेक्नोलॉजी जॉब का हॉट फील्ड आदि परिशिष्ट पृष्ठों पर छपने वाले फीचर आलेखों के ऐसे ही शीर्षक हैं।

एक शीर्षक में 'प्रोजेक्टों' शब्द आया है। हिन्दी समाचारपत्रों में इस रूप में आने वाले अंग्रेजी शब्दों की भी लंबी सूची बनाई जा सकती है। एजेंटों, एजेंसियों, ट्रांसपोर्टरों, प्रापर्टी डीलरों, वैकल्पिक फार्मूले आदि ऐसे ही शब्द हैं। इनका हिन्दीकरण हो चुका है और शहरी इलाकों में ये इस रूप में बोले जाते हैं। बहरहाल।

हिन्दी समाचारपत्रों में अंग्रेजी शब्दों का बढ़ता चलन किस बदलाव की ओर इशारा करता है?क्या यह हिन्दी समाज में अंग्रेजी के प्रति बढ़ते रूझान को दर्शाता है? अंग्रेजी का दबदबा पूरे भारतीय समाज पर रहा है और युवाओं ही नहीं बल्कि दफ्तरों में काम करने वालों, इधर-उधर सफर करने वालों, दुकानदारों जैसे आम लोगों की बातचीत के वाक्यों में अंग्रेजी के शब्द सहजता से शामिल होते हैं और यह सिर्फ शहरों-महानगरों की बात नहीं है। इनमें से बहुतों का लेना-देना और संपर्क गांवों से होता है और वहां के लोगों में उनके शब्द जगह बना लेते हैं। लेकिन लिखित हिन्दी के वाक्यों में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का चलन नहीं रहा है। फिर क्या हिन्दी समचार पत्रों में ऐसे प्रयोगों को इस दिशा में मार्गदर्शक माना जाए?

वरिष्ठ पत्रकार व चिंतक राजकिशोर ने नवभारत टाइम्स की ओर इशारा करते हुए बताया है कि 'युवा पुत्र स्वामी की चिंता यह थी कि हिन्दी अख़बार युवा पीढ़ी तक कैसे पहुंचे। वे अक्सर यह लतीफा सुनाते थे कि जब बहादुशाह जफर मार्ग से, जहाँ अख़बार का दफ्तर है, किसी बूढ़े की लाश गुजरती है, तो मुझे लगता है कि एक और पाठक चल बसा। नए पाठकों की तलाश में उन्होंने शहरी युवा को निशाना बनाया उन्होंने हिन्दी के सम्पादकों से कहा कि हिन्दी में अंग्रेजी मिलाओ,

वैसी पत्रकारिता करो जैसी अंग्रेजी पत्र कर रहा है, नहीं तो तुम्हारी नाव डूबने ही वाली है। सरकुलेशन नहीं बढ़ेगा, तो एडवर्टीजमेंट नहीं बढ़ेगा, रेवेन्यू में कमी आएगी और अंत में वी विल फोर्स्ड टू क्लोज डाउन दिस पेपर। स्थानीय संपादक इस नए योग वाशिष्ठ के प्रवचनकार बने और हमें बताने लगे कि हम लोगों को विशेषज्ञ की जगह एक्सपर्ट, समाधान की जगह सॉल्यूशन, नीति की जगह पॉलिसी और उदारीकरण की जगह लिब्रलाइजेशन लिखना चाहिए।'' (उत्तम जीवन दास विचार, जनसत्ता 'रविवारी' में प्रकाशित लेख, 14 सितम्बर, 2008)।

इसी बदलाव को हिन्दुस्तान के दिल्ली संस्करण के स्थानीय सम्पादक प्रमोद जोशी अलग ढंग से देखते हैं - ''क्या अंग्रेजी के शब्दों को हम हिन्दी में जबरन डालने की कोशिश कर रहे हैं? यह हिंग्लिश है पर क्या यह अस्वाभाविक भाषा है? अंग्रेजी के शब्द शामिल हो रहे हैं तो क्यों? क्या वे हमारी बोली के शब्द नहीं हैं? प्रिंट मीडिया के पास लिखित भाषा का अतीत है। वह उसके मानक ही तैयार नहीं कर पाया था कि बड़े शहरों की बोली में बदलाव आने लगा। अखबारी भाषा आसान और रोचक होनी चाहिए। पर उसके सभी पन्नों की भाषा भी एक नहीं होती। कहीं वह चुलबुली होती है कहीं सपाट। अखबार को अपने पाठकों की बोली और भाषा की समझ को भी बूझना चाहिए। हिन्दी का पाट चौड़ा है और प्रवाह बहुत तेज। वक्त से मुंह चुराने की नहीं, उसका सामना करने की कोशिश होनी चाहिए।''

(पैन इंडियन का गड़बड़झाला, हिन्दुस्तान के सम्पादीकय पृष्ठ पर लेख, 24 अक्टूबर 2005)

यहां हम अंग्रेजी से अनुवाद पर चर्चा नहीं कर रहे हैं जिस पर हिन्दी समाचारपत्रों का बहुत सारा काम आधारित होता है और जिसके परिणामस्वरूप कई नए शब्द हिन्दी समाचारपत्रों में लगातार गढ़े जाते रहे हैं। इससे हिन्दी का शब्द भंडार बढ़ता ही हैं। भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, विश्व सुंदरी, भूमंडलीय ताप आदि ऐसे ही शब्द है। 'विश्व सुंदरी' मिस वर्ल्ड का शब्दशः अनुवाद न होकर रूपांतरण ही अधिक कहा जाएगा जिसके अच्छे और बुरे परिणाम भी होते हैं। इनके अलावा पंजाबी, मुम्बइया हिन्दी और हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द भी हिन्दी समाचारपत्रों में विभिन्न अवसरों पर दिखते हैं। लेकिन इन्होंने हिन्दी समाचार पत्रों की भाषा पर व्यापक प्रभाव नहीं डाला है।

देखें तो हिन्दी समाचारपत्रों की नीति मुख्य रूप से लिखित हिन्दी नहीं बल्कि आम लोगों में बोली जाने वाली हिन्दी के करीब जाने की रही है। लेकिन स्वयं लिखित रूप में ही विविध क्षेत्रों की विशिष्ट अभिव्यक्तियों को प्रस्तुत करने की उसकी अनिवार्यता उसे लिखित हिन्दी के कुछ चरित्रों को समाए रखने को बाध्य करती है और इसी तरह हिन्दी समाचारपत्र हिन्दी के एक विशिष्ट स्वरूप के प्रस्तोता की भूमिका निभाते हैं।

डॉ. देवेन्द्र कौर ब्रैच, ऐसो. प्रो. हिन्दी, राजकीय कॉलेज, टांडा–उड़मुड़, पंजाब
मो. : 09878504652
ई–मेल : dkaur751@gmail.com

विज्ञापन और हिन्दी

डॉ. देवेन्द्र कौर ब्रैच

विज्ञापन की दुनियां बहुत विशाल है -खाद्य पेय पदार्थ, चटनी, बिस्कुट, इलैक्ट्रानिक चीज़े, सौंदर्य प्रसाधान, दवाईयां और संस्थाओं से सम्बन्धित विज्ञापन हमें रोजमर्रा जीवन में देखने को मिलते हैं। इनके अतिरिक्त नौकरी, विवाह, शोक समाचार भी विज्ञापन का अंग हैं। इन सब विज्ञापनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग भाषा है।

हम कह सकते हैं कि विज्ञापन किसी भी उत्पाद की बिक्री को बढ़ाने, व्यक्तिगत से लिंग जन–सम्पर्क एवं उत्पादों को प्रचारित करने के किसी एक प्रणाली का नाम है। विज्ञापन शब्द की उत्पति Latin शब्द Advertise से हुई है। जिसका अर्थ है मनुष्य के मस्तिष्क या सोच को बदलना अन्य शब्दों में कहें तो जनता और खरीददार के मस्तिष्क को विक्रेता या मैनुफैक्चरर के प्रयासों के अनुसार बदलना। विज्ञापन मार्केटिंग प्रबन्धन संचार का एक उपकरण है जिसको निम्नानुसार परिभाषित किया जा सकता है:-

विज्ञापन एक अनौपचारिक प्रस्तुतिकरण का कोई भी भुगतानगत रूप तथा एक सुनिश्चित प्रायोजक द्वारा विचारों उत्पादों और सेवाओं का उत्पादन है। अथवा

ऐसे भी विज्ञापन को पारिभाषित किया जा सकता है कि ''विज्ञापन एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हमें यह पता चलता है कि हमें क्या बेचना है अथवा हम क्या खरीदना चाहते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ऑफ बिट्रानिका के अनुसार किसी वस्तु के विक्रय अथवा सेवा के प्रसार हेतु मूल्य चुकाकर की गई घोषणा विज्ञापन है।'' वृहत हिन्दी कोश में विज्ञापन का

अर्थ है –समझना, सूचना देना, इश्तहार, निवेदन व प्रार्थना।

यह युग प्रतियोगिता का है। प्रतिद्वन्द्विता के कारण उत्पाद बेचना कुशल कार्य है। अपने उत्पाद को बेचने के लिए उत्पादक रेडियो, समाचार पत्र, पत्रिका, पोस्टर्स, पर्चे, सिनेमा स्लाइड के माध्यम से अपनी बात जनता तक पहुँचाते हैं। समाचार पत्र और टैलीविजन सर्वाधिक सक्षम और उपयोगी सिद्ध हुए हैं। विज्ञापन नयी वस्तुओं और नए अविष्कारों को मनुष्य के जीवन से जोड़कर जीवन को सुखमय और सुन्दर बनाने की दिशा में किया जाने वाला प्रयास है। भारत के गांव, कसबे, नगर, महानगर के हर औसत नागरिक को ज़िंदगी के हर दिन विज्ञापन से गुजरना पड़ता है। सुबह आँख खोलते ही अख़बार में कई तरह के विज्ञापन आते हैं। यदि वह रेडियो चलाता है तो आकाशवाणी से व्यापारिक विज्ञापन सुनाई देते हैं। टैलीविज़न का बटन दबाता है तो रंगीन चित्रों सहित वहाँ विज्ञापन, सड़कों पर चलता है वहाँ विज्ञापन, यदि मनोरंजन के लिए सिनेमा घर जाता है तो वहां भी विज्ञापन की स्लाइड दिखाई देती है।

विज्ञापन की दुनियां बहुत विशाल है –खाद्य पेय पदार्थ, चटनी, बिस्कुट, इलैक्ट्रानिक चीज़े, सौंदर्य प्रसाधन, दवाईयां और संस्थाओं से सम्बन्धित विज्ञापन हमें रोजमर्रा जीवन में देखने को मिलते हैं। इनके अतिरिक्त नौकरी, विवाह, शोक समाचार भी विज्ञापन का अंग हैं। इन सब विज्ञापनों में सबसे महत्वपूर्ण भाग भाषा है। क्योंकि उसमें कम से कम स्थान में वस्तु या सेवा की संस्था की प्रवृत्तियों की चर्चा करनी पड़ती है। विज्ञापन के लिए अधिकाधिक प्रयोग की भाषा हिन्दी भाषा है। इसमें समूह जनता का ध्यान आकर्षित करने की क्षमता है। यह भाषा सरल और रोचक है। इसमें दिया गया विज्ञापन समाज के सभी वर्गों की समझ में आ जाता है। भाषा सरल, सुबोध, तथ्यपूर्ण विज्ञापित वस्तु की विशेषता पर बल, चित्र शीर्षक, ट्रेडमार्क का समन्वय आवश्यक है। विज्ञापन की भाषा संचार भाषा है। यह साहित्य की भाषा न होकर साधारण जनता के व्यवहार की भाषा है। विज्ञापन में उस हिन्दी का प्रयोग होता है जो सभी वर्गों के पाठक–दर्शक श्रोताओं के लिए उपयुक्त हो।

भाषा के बिना विज्ञापन नही हो सकता क्यों कि हर प्रतीकात्मक अथवा भाषेत्र संकेत को हर दर्शक नही समझ सकता। ऐसे में, आज हम नि:संदेह विज्ञापनों की हिन्दी सर्जना–सम्प्रेषणीयता और सक्षमता को अनदेखा नही कर सकते, क्योंकि आज सब उत्पाद अपने–अपने कारखानों–दुकानों में हिन्दी के बिना बन्दी है। संचार माध्यमों के विस्तृत फलक पर आज हिन्दी अपनी विजय–ध्वजा फहरा रही है। परिस्थितियों और प्रवेशगत परिवर्तन के चलते हिन्दी आज साहित्य के दायरे तक सीमित न रहकर अपने प्रयोजनमूलक रूप में मानव–जीवन के विस्तृत विविध क्षेत्रों में पदार्पण कर जनमानस के होंठों पर थिरकने लगी है और इसी के फलस्वरूप आज हिन्दी का बहुमुखी और बहुआयामी अस्तित्व और वर्चस्व विपुल परिमाण में परिख्यात है। ऐसे में जिनकी दृष्टि में हिन्दी का यह रूप निरर्थक, अशुद्ध, अवांछित, दूषित, भ्रष्ट और असाहित्यिक है, उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि एक तरफ चिंतन कर्म में मुक्त

विश्व-व्यापार, सूचना तकनीक, आत्म विस्तार और विराट संचार और दूसरी तरफ क्यों भूमण्डलीय हिन्दी का तिरस्कार, उसके प्रति दृष्टिकोण ''अनादर'' ?

सहज भाषा जनता की जनता द्वारा और जनता के लिए होती है और बाज़ारवाद के दवाब के कारण ''हिन्दी'' उसी सहजता-स्वाभाविकता के साँचे में ढली है, अप्रिय न होकर लोकप्रिय हुई है।

अब बात आती है- विज्ञापनों की हिंदी की। एक सिक्के के दो पहलूओं की तरह विज्ञापनों की भाषा साधारण भी होती है और विशेष भी। साधारण इसलिए, क्योंकि जन-साधारण तक किसी उत्पादादि से सम्बन्धित जानकारी को पहुँचाने की चेष्टा बोधगम्य, सरल भाषा में की जाती है और विशेष इसलिए क्योंकि इसमें वक्र, विशिष्ट मुहावरेदार, प्रचलित, अलंकारिक, विशिष्ट, व्याकरणिक प्रयोग आधारित और गहन अर्थ-गर्भित अभिव्यक्तियां भी सहज समाविष्ट होती हैं

विज्ञापन के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:-

1. भाषा-संकर प्रयोग

   हिंग्लिश

1. ठण्डा ठण्डा (Cool-Cool) नवरत्न।
2. दूध-दूध-दूध, दूध-दूध

   पी सकते हैं रोज, Glassful दूध, दूध, दूध, दूध, दूध।

   गर्मी में डालो दूध में Ice

   दूध बन गया Very nice

   दूध है Wonderful every season

   पी सकते हो for health reason

   रहोगे फिर Fit and Fine

   जियोगे बरस ninety nine अमूल्य दूध।

मुहावरे और लोकोक्तियां का प्रयोग

i) हो गया न इज्जत का फलूदा

ii) देगी मिर्च का तड़का, अंग-अंग फड़का।

अव्ययों का प्रयोग

i) स्वाद भी, सेहत भी–मंगतराम दालें

ii) LIC- ज़िन्दगी के साथ भी, ज़िन्दगी के बाद भी

iii) सिर्फ ..... रूपये में ।

प्रश्नात्मकता

i) क्या आपके दाँतों में तकलीफ है ?

क्या आपके टूथपेस्ट में नमक है ? (Colgate Active Salt)

ii) एक लीटर पानी से क्या सब नहाओगे ?

एक लीटर पैट्रोल में क्या इंडिया घूमोगे ? (मीरिंडा)

शब्दावृत्ति

i) जागो रे, जागो रे, जागो रे, जागो रे, जागो रे

रोज़ सुबह सिर्फ उठो नहीं, जागो (टाटा टी)

ii) जागो ग्राहक जागो।

निषेधजन्य चेतावनी

N.R.I. से शादी खुशियों की गारंटी नहीं।

प्रेरणादायक, संदेशप्रदता

i) Pepsodent - जो भी खाओ सच बताओ।

ii) Idea - पेड़ न काटने का संदेश

इस प्रकार विज्ञापन की भाषा में विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है। विज्ञापन के क्षेत्र में हिन्दी प्रयोग की बहुलता देखकर हम हिन्दी के उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं। इससे हिन्दी का विकास होगा और रोज़गार के अवसर भी बढ़ेंगे। विज्ञापन की अधिकता और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विज्ञापन ऐजेंसियां बाज़ार में आ गयी हैं। ये कम्पनियां डिमांड के आधार पर विज्ञापन तैयार करती हैं। कम्पनियां खुलने से रोज़गार के अवसर और बढ़े हैं। आने वाला समय विज्ञापनों के प्रभाव के बढ़ने का समय है। विज्ञापन हिन्दी का पश्चिमी जगत से परिचय करा रहे हैं।

डॉ. सारिका कालरा, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग), लेडी श्रीराम कॉलेज
(दिल्ली विश्व विद्यालय), लाजपत नगर, नई दिल्ली–24
ई–मेल : sarikakalra9@gmail.com

हिन्दी भाषा : अस्मितामूलक प्रश्न और भविष्योन्मुखी संदर्भ

डॉ. सारिका कालरा

राष्ट्रभाषा कहलाने के लिए, सबसे आवश्यक शर्त यह होती है कि न्यूनाधिक अंशों में पूरे देश में व्याप्त हो तो राष्ट्रभाषा स्वतः इस पद की अधिकारिणी हो जाती है। इसके लिए, किसी आदेश या विधि-विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती। देश के भिन्न भिन्न भाषा समुदाय धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में आने पर प्रायः जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वही राष्ट्रभाषा कहलाने की अधिकारिणी भी होती है।

विश्व पटल पर भारत अपनी सभ्यता, संस्कृति और अपनी भाषा के कारण, एक अलग पहचान रखता है। हर देश का नागरिक यह चाहता है कि उसका देश और उसकी विशिष्टताएं विश्व स्तर पर भी जानी पहचानी जाएं। यह हर भारतीय नागरिक का गैरव भी है और गर्व भी कि उसके देश की सभ्यता, संस्कृति और उसकी भाषा विश्व के अनेक देशों की प्रतिष्ठित सभ्यताओं, संस्कृतियों, एवं भाषाओं से किसी भी रूप में कमतर नहीं है। विश्व के आध्यात्मिक गुरू कहलाने वाले भारत की संस्कृति के प्रशंसक विश्व के कोने-कोने में व्याप्त हैं। इस देश की वैदिक भाषा संस्कृत में लिखे ऐतिहासिक और पौराणिक साहित्य का लाभ न केवल भारतीयों को मिला अपितु अन्य देश भी इससे लाभान्वित हुए हैं। हमारी संस्कृति इसी भाषा के माध्यम से विश्व के कोने-कोने में पहुँची है।

संस्कृति का सबसे आवश्यक घटक भाषा होती है। कोई भी देश पूरी दुनिया को अपने अस्तित्व का बोध अपनी भाषा के माध्यम से ही कराता है। वैदिक काल में संस्कृत, बौद्ध काल में पालि, मुगल काल में फ़ारसी और ब्रिटिश काल में अंग्रेजी भारत में

राजकाज की भाषा थी। लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी भाषा जो कि भारतीय सभ्यता, वं संस्कृति की पहचान से जुड़ी हुई है उसे स्वतंत्र भारत संघ की राजभाषा के रूप में सुशोभित किया ग्या। लेकिन संविधान में उसे यह स्थान दिलाने के लिए, भी काफी संघर्ष करना पड़ा। संविधान सभा में कई गंभीर बहस के बाद ही हिंदी को भारत की राजभाषा? घोषित किया गया। भारतीय संविधान की 18 वीं अनुसूची में 22 भाषाएं हैं। ये भाषाएं विभिन्न प्रदेशों के जन-जीवन की प्रतिनिधि भाषाएं हैं। परंतु इनमें से हिंदी ही एक ऐसी सशक्त भाषा है जो देश के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के बीच पारस्परिक विचार-विनिमय का माध्यम होने के साथ-साथ पूरे देश को एकता के सूत्र में बांधने वाली भाषा भी है। अनेकता में एकता हमारी परम्परा रही है। वास्तव में सांस्कृतिक दृष्टि से भारत हमेशा से एक रहा है। पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक फैला यह देश विविध विशिष्टताओं से पटा हुआ है। लेकिन इन सारी विविधताओं को एक दूसरे के निकट लाने का काम हिंदी भाषा करती है। इस तरह से हिंदी पूरे भारत देश के लिए संपर्क भाषा का काम भी करती है। सदियों से हिंदी भाषा अपनी सम्पर्क भाषा की भूमिका को निभा रही है। अपनी इसी भूमिका के कारण वह भारत की राष्ट्रभाषा भी कहलाती है।

राष्ट्रभाषा कहलाने के लिए सबसे आवश्यक शर्त यह होती है कि न्यूनाधिक अंशों में पूरे देश में व्याप्त हो तो राष्ट्रभाषा स्वतः इस पद की अधिकारिणी हो जाती है। इसके लिए किसी आदेश या विधि-विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती। देश के भिन्न भिन्न भाषा समुदाय धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में आने पर प्रायः जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वही राष्ट्रभाषा कहलाने की अधिकारिणी भी होती है। वैसे राष्ट्रभाषा के प्रश्न को बहुत पहले अर्थात् स्वतंत्रता से पूर्व ही कई चिंतकों तथा साहित्यकारों ने उठाया था और सभी ने, कमत से हिंदी भाषा के संदर्भ में ही अपनी बात रखी थी। महात्मा गाँधी, स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, डॉ जाकिर हुसैन, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, डॉ राजेन्द्र प्रसाद आदि अनेक राजनीतिज्ञ, विद्वान, चिंतक, बुद्धिजीवी हिंदी को अपना समर्थन देते रहे। यह समर्थन हिंदी को उसकी देशव्यापी भूमिका के कारण ही प्राप्त हुआ था। इस तरह से हिंदी ने स्वतंत्रता संग्राम में भी अपनी महत्ती भूमिका निभाई। जब सारे चिंतकों, बुद्धिजीवियों और रचनाकारों ने, कमत से हिंदी को आजादी के लड़ाई में हिंदी भाषा को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया। आजादी के बाद उसे संविधान द्वारा राजभाषा का गौरव दिए जाने के पीछे उसे अतिरिक्त सम्मान देने का भाव ही था। वैसे राष्ट्रभाषा का मुद्दा व्यक्ति की अस्मिता के साथ जुड़ा हुआ मुद्दा है। हो सकता है कि उत्तर पूर्व का व्यक्ति या दक्षिण भारतीय व्यक्ति हिंदी के साथ उस तरह का जुड़ाव महसूस न करे जिस तरह से उत्तर भारतीय व्यक्ति या अन्य राज्यों के व्यक्ति करते हैं। यह निर्भर करता है कि हम हिंदी भाषा के साथ कितना जुड़ाव महसूस करते हैं। क्या वह हमारी पहचान है? क्या वह हमारी सांस्कृतिक चेतना की प्रतिधवनि है? जिस तरह पूरे भारत के व्यक्ति हिंदी के संदर्भ में इस तथ्य को महसूस करेंगे उस दिन सभी एकमत से इस बात को स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाएँगें कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मेरा यह मानना है कि उत्तर-पूर्व

और दक्षिण भारतीय हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी से अधिक जुड़े हुए हैं। अंग्रेजी को वे अपने ज्यादा करीब पाते हैं। जबकि सभी दक्षिण भारतीय भाषाएं संस्कृत से जन्मी हैं।

14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लेने से उसके प्रयोग का क्षेत्र और विस्तृत हुआ है। जहाँ वह पहले केवल बोलचाल तथा साहित्य रचना में उसका प्रयोग किया जाता था वहीं अब प्रशासनिक कार्यों में भी उसका प्रयोग होने लगा। उसी दिन राजभाषा की बहस की समाप्ति पर संविधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था --''मेरे विचार में हमने अपने संविधान में एक अध्याय स्वीकार किया है जिसका देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। हमारे इतिहास में कभी भी एक भाषा को शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। हमारा धार्मिक साहित्य और प्रकाशन संस्कृत में सन्निहित था। आज पहली

अंतरराष्ट्रीय फलक पर भी हिंदी अपनी पहचान बना रही है। उसमें वह सारी खूबिया हैं जो उसे अंतरराष्ट्रीय भाषा होने का गौरव प्रदान करती हैं। विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में चीनी भाषा पहले स्थान पर, स्पेनिश दूसरे स्थान पर, अंग्रेजी तीसरे स्थान पर तथा हिंदी चौथे स्थान पर है। उसका यह स्थान उसके सुनहरे भविष्य का संकेत देता है। हिंदी भाषा-भाषी समाज बहुत विशाल है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र भी है और इस नाते वह संयुक्त राष्ट्र संघ में भी एक महत्वपूर्ण देश है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अभी तक छह आधिकारिक भाषाएं हैं- अंग्रेजी, अरबी, चीनी, फ्रेंच, रूसी और स्पेनिश ।

बार ऐसा संविधान बना है जब कि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी और उस भाषा का विकास समय की परिस्थितियों के अनुसार ही करना होगा।'' इस तरह हिंदी भाषा के प्रति एक जिम्मेदारी का भाव जगाने का नैतिक दायित्व भी हमारे सामने रहा। वह अलग बात है कि संविधान द्वारा हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिए 65 साल से अधिक होगए परंतु आज भी हिंदी पूर्ण राजभाषा का दर्जा प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है। यह एक बहुत बड़ी चुनौती है और इस चुनौती को आसान बनाने के लिए अनेक सरकारी संस्थाएँ समूह मंत्रालय भारत सरकार, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पारिभाषिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग केंद्रीय हिंदी संस्थान आदि विभिन्न सरकारी संस्थाएं तथा अनेक हिंदी स्वयंसेवी संस्थाएं भी अपना योगदान कर रही हैं। इस तरह हिंदी भाषा भारत में न केवल सम्पर्क भाषा तथा राजभाषा बल्कि राष्ट्रभाषा के रूप में जानी तथा पहचानी जाती है।

अंतरराष्ट्रीय फलक पर भी हिंदी अपनी पहचान बना रही है। उसमें वह सारी खूबिया हैं जो उसे अंतरराष्ट्रीय भाषा होने का गौरव प्रदान करती हैं। विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में चीनी भाषा पहले स्थान पर, स्पेनिश दूसरे स्थान पर, अंग्रेजी तीसरे स्थान पर तथा हिंदी चौथे स्थान पर है। उसका यह स्थान उसके सुनहरे भविष्य का संकेत देता है। हिंदी भाषा-भाषी समाज बहुत विशाल है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र भी है और इस नाते वह संयुक्त राष्ट्र संघ में भी एक महत्वपूर्ण देश है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अभी तक छह अधिकारिक भाषाएं हैं- अंग्रेजी, अरबी, चीनी, फ्रेंच, रूसी और स्पेनिश । भारत भी कई सालों से यह प्रयास कर रहा है कि हिंदी भाषा को भी संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकारिक भाषाओं में शामिल किया जा, और यह मांगे बिल्कुल जायज भी है क्योंकि हिंदी विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में चौथे नंबर पर है। इस तरह वह विश्व भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बना, जाने की मुहिम की शुरूआत नागपुर में 10 जनवरी 1975 को आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में हुई थी। तब से लेकर अब तक सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकारिक भाषा बना, जाने का संकल्प दोहराया जाता रहा है। इसके लिए भारतीयों को भी गंभीरता से प्रयत्नशील होना होगा। उन्हें अपने काम-काज, बोलचाल आदि में अधिक से अधिक हिंदी भाषा का प्रयोग करना होगा। उसकी विभिन्न प्रयुक्तियों को ईजाद करना होगा। हिंदी में विभिन्न प्रयुक्तियों को इजाद किया भी है और निरन्तर कर रही है। परस्पर बातचीत और कामकाज की भाषा के रूप में हिंदी भारत के हर अंचल व प्रांत के हर हाट, बाजार, सिनेमाघर, बस स्टैंड, टी0 वी0 चैनलों पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए है परंतु हिंदी को साथ ही उसे साहित्य, बाजार और अंतरराष्ट्रीय संबंध की भाषा बनना होगा।

वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी मजबूती के साथ उभर कर तो आई है पर उसका रूप काफी बदल रहा है और बदला है। कंम्पयूटर, वेबसाइट, इंटरनेट, मोबाइल आदि उपकरणों में अंग्रेजी अपना दबदबा बनाए हुए है। हिंदी वहाँ भी है लेकिन उसका रूप वहाँ पर विकृत है। भूमंडलीकरण अपने मुक्त व्यापार के लिए भाषा और संस्कृति को मोहरा बनाता है। उसे एक ऐसी भाषा चाहि, जो चलायमान हो और अस्थिर हो। वस्तुतः भाषा का सवाल कभी भी सिर्फ भाषा का सवाल नहीं होता। वह अपने मूल में वास्तव में एक देश और उसकी संस्कृति की अस्मिता का सवाल होता है। हिंदी इस संदर्भ में भारत की अस्मिता उसकी पहचान का प्रतीक है। भारत की आजादी की लड़ाई भी इसी के माध्यम से जीती गई थी। हिंदी को उर्जा भारत की जनता से प्राप्त होती है। आज दुनिया के अधिकतर देशों में हिंदी की पढ़ाई होती है। साथ ही विदेशों से कई विद्यार्थी केवल हिंदी पढ़ने के लिए ही भारत आते हैं। और भारत में हिंदी पढ़कर वे अपने देश जाकर हिंदी अध्ययन-अध्यापन से जुड़ जाते हैं। लेकिन इसके साथ ही एक दुर्भाग्य पूर्ण तथ्य यह भी है कि भारत का व्यक्ति अपनी हिंदी को छोड़कर अंग्रेजी भाषा को अपना रहा है। इस संबंध में यहाँ पर कुछ उद्धारण प्रस्तुत हैं -- काठमांडू के हिंदी विद्वान डॉ0 सूर्यनाथ गोप कहते हैं--'अगर आप अंग्रेजी नहीं छोड़ सकते तो हिंदी भी रख सकते हैं। कोई भी भाषा प्रयोग से ही

जिंदा रह सकती है। अंग्रेजी ने कई देशों में अनेक भाषाओं को खत्म कर दिया, फिर भाषा के साथ संस्कृति भी खत्म हो जाती है।'' बीजिंग विश्वविद्यालय के हिंदी प्रोफेसर भारतीयों की मनःस्थिति का खुलासा करते हुए कहते हैं--''आपके यहाँ भारतीय दो मिनट बाद ही हिंदी बोलेगें और दो मिनट बाद ही अंग्रेजी में उतर आएंगे। अगर मैं किसी भारतीय से हिंदी बोंलू तो भी वह अंग्रेजी में जवाब देगा। आपके हिंदी बोलने से लगता है आप भारतीय हैं। वह आपकी पहचान हैं। अंग्रेजी बोलने से न भारत आगे बढ़ेगा और न भारतीय बड़े होंगे।'' हिंदी भाषा से संबंधित ये मत वास्तव में अत्यंत विचारणीय हैं। वास्तव में हिंदी भाषी समाज अंग्रेजी की प्रभुता को देखते हुए अंग्रेजी भाषा को तेजी से अपनाता जा रहा है। अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है, व्यापार की भाषा है। लेकिन साथ ही यह भी उतना ही सच है कि हिंदी भी धीरे-धीरे विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाती जा रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने लिए भारत में सबसे बड़ा बाजार दिखाई देता है। वे हिंदी को अपना कर अपने लिए स्थायी बाजार की खोज में लगी हैं। इसके लिए जरूरी है कि वे हिंदुस्तान को अपनाए हिंदी को अपनाएं। वे जिस हिंदी को अपना रही हैं वह बहुत अलग है। वह हिंगलिश है। उसमें धड़ल्ले से अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। विज्ञापन के द्वारा एक नई हिंदी ईजाद की जा रही है। यहाँ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। हिंदी भाषा के मूल रूप के साथ छेड़छाड़ की जा रही है। सरकारी प्रयत्नों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवीयों, हिंदी से जुड़ी हुई संस्थाओं को यहाँ विशेष प्रयास की आवश्यकता है।

हिंदी भाषी क्षेत्र की समस्याओं की तरफ हजारी प्रसाद दिव्वेदी ने पहले ही स्पष्ट कर दिया था। अपने एक निबंध 'मनुष्य ही साहित्य का लय है' में उन्होंने लिखा था--''हमें सावधानी से सोचना होगा कि हिंदी बोलने वाला जन समुदाय क्या वस्तु है और वास्तव में वह परिस्थिति क्या है, जिसे हम बदलना चाहते हैं। काल्पनिक प्रेत को घूंसा मारना बुद्धिमानी का काम नहीं है। नगरों और गाँवों में फैला हुआ, सैकड़ों जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त अशिक्षा, दारिद्रय और पीड़ित मानव-समाज आपके सामने उपस्थित है। भाषा और साहित्य की समस्या वास्तव में उन्हीं की समस्या है। क्यों वे इतने दीन-दलित हैं? शताब्दियों की सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुलामी के भार से दबे हुए से मनुष्य ही भाषा के प्रश्न हैं और संस्कृति तथा साहित्य की कसौटी हैं।'' यह चेतावनी हजारी प्रसाद दिव्वेदी ने बहुत पहले ही दे दी थी पर शायद हम इसे अनदेखा करते जा रहे हैं। हम हिंदी भाषा की अस्मिता को नकार कर एक अंधी दौड़ में शामिल होते जा रहे हैं। वैश्वीकरण से हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं का जो सबसे बड़ा नुकसान हुआ है वह है भारतीय भाषाएं बोलने वालों के भीतर अंग्रेजी की तुलना में बढ़ रहा हीनता बोध। यह हीनता बोध पहले भी था पर उतना नहीं था। आजादी के दौर में हिंदी के प्रति जो राष्ट्रीयता का भाव जागा था उसने हिंदी को राष्ट्रभाषा की श्रेणी में लाकर रख दिया था। परंतु वैश्वीकरण ने इस भावना को बहुत नुकसान पंहुचाया। बाजार और विज्ञापन घालमेल की भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। देवनागरी लिपि को अपदस्थ कर हिंदी भाषा को रोमन लिपि में लिखा जा रहा है।

भूमंडलीकरण कोई नया समाज नहीं गढ़ रहा है बल्कि मौजूदा भाषा समाज को दिग्भ्रमित

कर रहा है। यह मनुष्य एवं भाषा को बाजार में तब्दील कर रहा है। हिंदी साहित्य इस दिशा में बहुत तेजी से सकारात्मक दिशा में काम कर रहा है। हिंदी साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध आदि सभी विधाओं में इसमें लिखा जा रहा है। आजादी से पहले और आजादी के बाद के साहित्य में पर्याप्त अंतर है। आजादी के बाद नए-नए विषयों पर लिखा जा रहा है। चिंतन के जितने मुद्दे हैं। लेखन के भी उतने ही विषय हैं। जितनी अधिक रचनाएं हिंदी में लिखी जा रही हैं उतनी अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं लिखी जा रही हैं। इससे से अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी भाषा का ही विकास होगा। लेकिन एक नई प्रवृत्ति हिंदी साहित्य रचना के अंर्तगत यह भी हो रही है कि हिंदी के लेखक अंग्रेजी शब्दों को प्रयोग बखूबी अपनी रचनाओं में कर रहे हैं और यही नहीं बोलियों का प्रयोग भी खूब हो रहा है। देशज शब्द इस्तेमाल किए जा रहे हैं। वास्तव में यह प्रयोग हिंदी की ताकत को बढ़ाने का ही काम कर रहा है। हिंदी अपनी बोलियों के साथ आगे आएंगे तो उसकी शक्ति और बढ़ेगी। हिंदी की बोलियां सांस्कृतिक दृष्टि से काफी सम्पन्न और विकसित हैं। उनमें छिपे हुए भंडार को इसी तरह खंगजा जा सकता है जब उन बोलियों का प्रयोग साहित्य रचना में हो ।

इन परिस्थितियों के संदर्भ में अभी यही कहा जा सकता है कि अभी हिंदी को विश्व पटल पर स्थापित करने में बहुत संघर्ष करना होगा। हिंदी को अभी एक बहुत लंबी यात्रा तय करनी है। हिंदी भाषा, हिंदी समाज, हिंदी विद्वान, हिंदी के साहित्यकार, हिंदी भाषा शास्त्रियों को अभी हिंदी को आगे बढ़ाने में अपनी सक्रिय भूमिका निभानी होगी और इन सबसे उपर सरकारी स्तर पर हिंदी को बढ़ावा देने वाले प्रयासों में तेजी आनी चाहिए। यह तभी होगा जब हम हिंदी से आत्मिक स्तर पर जुड़ेंगे वरना हिंदी का प्रयोग हम हर 14 सितंबर को हिंदी सप्ताह के अवसर पर करेंगे। यह कल्पना भी हमारे लिए बहुत भयावह है।

संदर्भ ग्रंथः

1- हिंदी कल आज और कल, प्रभाकर क्षेत्रिय, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2012

2- राजभाषा-नीति-कार्यान्वयन चुनौतियां एवं समाधान, सुनील भूटानी, हेमाद्रि प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2012

3- हिंदी भाषा का समाजशास्त्र, सं0 डॉ0 अमरनाथ, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, सं0 2006

4- हिंदी और हम, विद्यानिवास मिश्र, ग्रंथ अकादमी हिंदी, नई दिल्ली, सं0 1996

5- प्रवासी साहित्य जोहान्सबर्ग से आगे, सं0 डॉ कमल किशोर गोयनका, विदेश मंत्रालय भारत सरकार, सं0 2016

6- भाषा विमर्श, संपादक डॉ0 रामशरण गौड, हिंदी अकादमी, दिल्ली, सं0 2002

डॉ. आरती झा, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी पंडित शम्भूनाथ शुक्ल,
शासकीय स्वशासी महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय गीत : विकास और कथ्य

डॉ. आरती झा

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय गीतों की परम्परा चारणकाल से आधुनिक काल (लगभग 950 वर्ष) तक चली आ रही है। चारण काल में राष्ट्र छोटे-छोटे होते थे। चारण कवि अपने छोटे से राष्ट्र के प्रमुख को ही अपना आश्रयदाता मानकर व्यक्ति विशेष को लक्ष्य में रखकर गीत सृजन किया करते थे। राष्ट्र की छोटी सी सीमा और अपना आश्रयदाता राजा ही उनका सब कुछ था।

भारत एक विशाल राष्ट्र है। यहाँ अनेक धर्म, मत, सम्प्रदाय और जातियों के लोग निवास करते हैं। अनेक प्रांत है, उनकी अपनी अलग परम्पराएं और भाषाएं हैं किन्तु इस विभिन्नता के होते हुए भी पग-पग पर एकता विद्यमान है। विभिन्नताओं की तह में व्याप्त एकता और समता, विभिन्नताओं को ठीक उसी तरह पिरो लेती है और पिरोकर एक सुन्दर समूह बना देती है जैसे रेशमी धागा भिन्न-भिन्न प्रकार और भिन्न-भिन्न रंग के पुष्पों को पिरोकर एक सुन्दर हार तैयार कर देता है। यह भाव केवल काव्य की सुन्दर कल्पना ही नहीं है वरन् भारतीय संस्कृति की महान्तम विशेषता का ऐतिहासिक तथ्य है।

भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब आक्रांताओं ने हमारी सीमाओं को पददलित करने का दुष्प्रयास किया है, तब-तब राष्ट्र का एक-एक युवक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए प्रस्तुत हुआ है। राष्ट्रीयता की यह भावना किसी युग विशेष की देन नहीं है, वरन् प्राचीन काल से ही इस धरती के कण-कण और प्रत्येक भारतीय के मन में पल्लवित होती रही है। राष्ट्रीयता कोई स्थूल पदार्थ नहीं है, जिसे देखा जा सके, यह तो आत्मिक और मनोवैज्ञानिक भावना है, जिसको

अनुभूत किया जा सकता है ।

भारतीय कवि और साहित्यकार प्रारम्भ से ही राष्ट्रीयता की पवित्र भावना को अपने काब्य और चिन्तन का विषय बनाते रहे हैं, जब-जब भी आवश्यकता हुई है कवियों ने वीरों की शिराओं में बहते रक्त की गति को तीव्र करने के लिये ओज और वीरता के गीत गाए हैं, ताकि शत्रु की ललकार को अपने लिए चुनौती मानकर वे राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा में अपना सर्वस्व होम कर दें।

समाज की स्मृति बहुत ही सामयिक और अस्थायी होती है। समाज कुछ वर्षों में ही महत्वपूर्ण घटनाओं को विस्मृत कर देता है, और केवल वर्तमान को ही सब कुछ समझता है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले अनेक राष्ट्र प्रेमी व्यक्तियों को हम भुला चुके हैं। हिन्दी साहित्य के अनेक साहित्यकार तथा कवि प्राचीनकाल से ही अपने युग की राष्ट्रीय भावना की सफल अभिव्यक्ति करते आए हैं, किन्तु उनकी अनेकों रचनाएं लुप्त प्रायः हैं। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् यह आवश्यक है कि युगों से चली आ रही राष्ट्रीय गीतों की परम्परा, विकास व कथ्य का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाये ।

अर्थात् एक स्त्री अपनी सखी से कहती है कि भला हुआ जो पति मारा गया। हे बहिन! यदि हमारा कन्त भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती ।

शारंगधर ने 'हम्मीर रासो' नामक एक वीरगाथा गीत काव्य लिखा था, पर यह आजकल उपलब्ध नहीं है । रामचंद्र शुक्ल ने कुछ असली पद 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में दिए हैं -

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय गीतों की परम्परा चारणकाल से आधुनिक काल (लगभग 950 वर्ष) तक चली आ रही है । चारण काल में राष्ट्र छोटे-छोटे होते थे। चारण कवि अपने छोटे से राष्ट्र के प्रमुख को ही अपना आश्रयदाता मानकर व्यक्ति विशेष को लक्ष्य में रखकर गीत सृजन किया करते थे । राष्ट्र की छोटी सी सीमा और अपना आश्रयदाता राजा ही उनका सब कुछ था । उन्हीं की वीरता का वर्णन व यशगान करना उनका परम कर्तव्य होता था। युद्धभूमि में भी चारण अपने राजाओं के साथ रहते थे और समय-समय पर अपने गीतों के माध्यम से उनमें ऊर्जा व शक्ति प्रवाहित करते थे। अपने वीर गीतों के माध्यम से ये कवि कायरों में भी प्राण फूंकने की शक्ति रखते थे ।[1]

चारण जाति का अस्तित्व हमारे देश में प्राचीनकाल से रहा है। अपने पवित्र आदर्श के कारण ही चारणों को समाज में सदैव सम्मान और आदर प्राप्त होता रहा है। उनका प्रधान ध्येय लोक-कल्याण, क्षत्रिय जाति में साहस और वीरता का संचार कर उन्हें अच्छे मार्ग पर लाना था ।

चारणों का क्षेत्र यद्यपि राजस्थान रहा है किन्तु इसे भारतीय साहित्य की सर्वोत्तम कृतियों में स्थान दिया जा सकता है। चारणों द्वारा रचित काव्य दो तरह के होते हैं – कविताबद्ध 'गीत' और गद्य बद्ध 'ख्यात'। रा गीत, राजपूताने में अब तक इसी अर्थ में 'गीत' और पदों का व्यवहार होता है जैसे – राजा उदयसिंह रा गीत, राठौड़ा री ख्यात आदि।[2] चारणों द्वारा रचित काव्य गीतों को जो अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता का वर्णन करते हुए रचे गए, हम वीर काव्यगीत कह सकते हैं।

अपभ्रंस काल में भी वीर काव्य गीत लिखे गए हैं स्वयंभू से लेकर हेमचंद ने भी फुटकर वीर गीतों की रचना की है। हेमचंद के कुछ वीरतापूर्ण दोहे आज भी गाए जाते हैं –

''भल्ला हुआ जु मारिया वहिणी महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयंसि अहु जई भग्गा घरू एन्तु।।''

अर्थात् एक स्त्री अपनी सखी से कहती है कि भला हुआ जो पति मारा गया। हे बहिन! यदि हमारा कन्त भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती।

शारंगधर ने 'हम्मीर रासो' नामक एक वीरगाथा गीत काव्य लिखा था, पर यह आजकल उपलब्ध नहीं है। रामचंद्र शुक्ल ने कुछ असली पद 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में दिए हैं –

'ढोला मारिय ढ़िल्ल महं मुच्छिउ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंति पर चलिअ बीर हम्मीर।।
चलिअ बीर हम्मीर पाऊ भर मेहणि कंपई।
दिगमिग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि।।
दिगमिग णह अंधार आण खुरसाणुक उल्ला।
दरमीर दमसि विपख्ख मारू ढिल्ली मह ढोल्ला।।

अर्थात् – दिल्ली में ढोल बजाया गया, म्लेच्छों के शरीर मूर्छित हुए। मंत्रिवर जज्जल को आगे करके वीर हम्मीर चले। चरणों के भार से पृथ्वी कांपती है। दिशाओं के मार्गों और आकाश में अंधेरा हो गया है, धूल सूर्य के रथ को आच्छादित करती है। ओल में खुरासानी ले आए। विपक्षियों को दलमल कर दबाया, दिल्ली में ढोल बजाया।

'पृथ्वीराज रासो' में रेवातट प्रसंग में जब गोरी और पृथ्वीराज का युद्ध होता है उपमाएं बड़ी प्रभापूर्ण है–

'घर घरकि घाइर करषि काइर, रसभि सूरस कूरयं।
गज घंट घनकिय रूद्र मनकिय, षनकि संकट उद्दयो।
तिह ठौर अद्भुत होत नृपदल, बधि पुज्जन षंड़यो।
सन्नाह सूरज सज्जि घाटं, चन्द्र ओपमं राजई।
बर फलित बंबई टोप औपत, रीस सीसत आइए।
नष्षित्र हस्त कि मौन चंपक कमल सूरहिं साइए।।'

अर्थात् – पृथ्वी कांपने लगी, जब चारणों ने कड़खा गाया तो कायरों की दृष्टि भी रौद्र और वीर रस पूर्ण हो गई । हाथियों के घंटे घनघोर शब्द करते हुए बजने लगे और धन का दान करते हुए देख युद्ध के नगाड़े बजने लगे। उस स्थान पर नृप का दल दुर्जनों का नाश करने के लिए अद्‌भुत रूप से सज्जित हुआ । शूरों के शिरस्त्रण पर लगे फूल तुर्रे उनके सिर पर उसी प्रकार गिरते थे जैसे सूर्य के हस्त नक्षत्र में स्थित होने से चम्पा और कमल बिखर गए हों ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी भाषा के प्रथम महाकाव्य में देशप्रेम और राष्ट्रीय प्रेम से सम्बंधित उदात्त भावनाओं का सुंदर चित्रण हुआ है । 'पृथ्वीराज रासो' की तरह जगनिक कृत आल्ह खण्ड या 'परमाल रासो' के गीतों में भी राष्ट्रीय भावना है । जगनिक के 'आल्ह खण्ड' को पढ़ने से हृदय को जोश मिलता है और अंग फड़कने लगते हैं –

'गुस्सा हुइकै पृथ्वीराज तब, तुरते हुकुम दियो करवाय ।
बत्ती दे देउ सब तोपन में, इन पाजिन को देउ उड़ाय ।
झुकै खलासी सब तोपन पर, तुरतै बत्ती दई लगाय ।
दगी सलामी दोनों दल में, धुअना रह्यो सरग मंडराय ।
तोपें छूटी दोनों दल में, रण में होन लगे घमसान् ।
अररर गोला छूटे, कड़ कड़ करै अगिनिया बान ।
रिमझिम रिमझिम गोला बरसै, सन-सन परी तीर की मार ।

इस प्रकार चारणों के काव्य गीतों में हमें व्यापक राष्ट्रीयता के दर्शन नहीं होते। चारणों के लिए छोटे राज्य ही राष्ट्र तुल्य थे, आश्रयदाता की भूमि उनका राष्ट्र था और यह छोटा राज्य ही उनके लिए राष्ट्रीयता का प्रतीक था । विदेशियों के लिए रोष की भावना इनमें विद्यमान थी । इनके गीत राष्ट्रप्रेम के संकुचित अर्थ को ध्वनित करते थे ।

भक्तिकाल में भी राष्ट्रभक्ति से सम्बंधित फुटकर गीत लिखे गए। भक्तिकालीन परिस्थिति हिन्दू मुस्लिम धर्म और संस्कृति के विरोध एवं एक्य की परिस्थिति थी । मुस्लिम आक्रमणकारियों ने राष्ट्र पर आधिपत्य कर लिया था । हिन्दू राष्ट्रध्यक्षों ने मुस्लिम आक्रमणकारियों का युद्ध क्षेत्र में डटकर मुकाबला किया उनके युद्ध, वीरता व यशगान का वर्णन कई कवियों ने किया है, उसी में हमें देशभक्ति के दर्शन होते हैं।

भारत में मुस्लिम शासकों की ये विशेषता रही है कि वे हिन्दू समाज से पूर्णतया घुलमिल न सके। जबरन धर्म प्रचार व धर्म परिवर्तन का कार्य भी इन्होंने किया, इसलिए एक-दूसरे के प्रति घृणा के भाव भरे हुए थे । नामदेव ने हिन्दू मुस्लिम एकता पर जोर देकर इस घृणा को कम करने का प्रयास किया –

'हिन्दू पै जै देहरा, मुसलमान मसीद,
नामा सोई सेबिया, जहँ देहरा न मसीद ।'

तुलसी ने राम के मुख से जन्मभूमि के प्रति प्रेम को इस प्रकार प्रकट किया है –

'अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोऊ ।
जन्मभूमि यम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि वह सरजू पावनि ।'

दुरसा जी ने राणा प्रताप के प्रशंसा में दोहे गाए थे –

'लोयै हिन्दू लाज, सगपण रो पै तुरकसूं ।
आरज कुल की आज, पूंजी राण प्रताप सी ।
अकबर पत्थर अनेक, कै भूपत मेला किया ।
हाथ न लागो टेक, पारस राण प्रताप सी ।'

यद्यपि रीतिकालीन काव्य श्रृंगारपरक था पर उनमें से कुछ कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता के गीत भी गाए हैं । जटमल द्वारा लिखित गोरा बादल की कथा में अलाउद्दीन के चित्तौड़ के दुर्ग पर आक्रमण के समय गोरा बादल की वीरता के गीत गाए गये हैं –

'तजै तरवार जुरज्ज कुं देह, दड़ों बड़ साह दुरज्जन देह
करैं चकचूर गयन्द कपाल, सकै उमराव न आप संभाल
कहै मुख मीर अयो जमकाल, ग्रदे नर दे हथियार सुड़ाल
तिणे तिणे देतन सारहुं वीर, न मारहिं तौ सिरगोरिल वीर ।'[13]

भूषण के गीत वीरगाथा के विकसित रूप हैं। औरंगजेब और उसके समर्थकों का उन्होंने अपने गीतों द्वारा विरोध किया एवं शिवाजी की प्रशंसा की है–

'इन्द्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है,
पौन बारिबाह पर संभु रातिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ।'

वास्तव में वीर हृदय होने के कारण भूषण को अप्रिय सत्य भी कहने पड़े पर 'अपने पौरूष से हताश हिन्दू जाति की ढ़ीली नसों में भूषण के छंदों ने बिजली का संचार कर दिया । शिवाजी के अतिरिक्त पन्ना के महाराज छत्रसाल की वीरता के गीत भी भूषण ने गाए हैं –

'रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज,
भूषण सकत करि बरवान यों बलन के ।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ।

भूषण के अतिरिक्त मान कवि, गोरेलाल 'लाल' श्रीधर मुरलीधर, वीर, सदानंद, सूदन, पद्माकर भट्ट, प्रतापसाह, बनवारी, जोधाराज और चंद्रशेखर ने वीर काव्य गीतों की रचना की है –

'धाड़ नच्चै लोहू बहे, परि बोलै सिर बोल ।
कटि कटि तन रन में परै, तो नहिं देहुं मंगोल ।
सिंह–गमन सुपुरूख वचन, कदलि फलै इकबार ।

तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजो बार ।[4]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में राष्ट्रीय गीतों में जन्मभूमि के प्रति प्रेम, स्वर्णिम अतीत का वर्णन, प्रकृति प्रेम, विदेशी शासन की निंदा व स्वदेश की स्तुति, जातीयता के उद्‌गार, वर्तमान दशा पर क्षोभ, सामाजिक सुधार, भविष्य का निर्माण, वीर पुरूषों व नेताओं की स्तुति, दु:खी किसानों व मजदूरों का चित्रण व राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम की भावनाएं सामने आती है ।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग भारतेन्दु हरिश्चंद्र से ही प्रारंभ होता है। भारतेन्दु इस युग के प्रतिनिधि गीतकार के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं, जिन्होंने नवजागरण, देश की समृद्धि, उन्नति व स्वतंत्रता की कामना की । स्वदेश के प्रति अभिमान व हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए उन्होंने प्रेरणास्पद कार्य किया । देश की पराधीनता व भारत की दुर्दशा देखकर जन-जन को जाग्रत करने के लिए उन्होंने विद्रोह के गीत गाते हुए कहा -

'रोअहुं सब मिलिकै आवहु भारत भाई,
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।'[5]

बदरीनारायण चौधरी प्रेमधान के 'स्वदेश बिन्दु' में देश की वंदना के गीतों की सुन्दर रचना हुई है -

'जय जय भारत भूमि भवानी ।
जाकी सुयश पताका जग के दस हूं दिसि फहरानी ।'

देश वंदना के गीतों में श्रीधर पाठक का स्थान अग्रणी है । उनके गीतों में भारत की शक्ति, शौर्य, धन-भव की वंदना के साथ स्वाधीनता की जय घोषणा और स्वतंत्र होने की कामना भी है -

'वंदे भारत-देश मुदारम् ।
सुखमा-सदन-सकल-सुख सारम् ।
भाल विशाल हिमाचल भ्राजम्, चरन विराजित अर्ण वराजम् ।[6]

भारतेन्दु के गीतों में हमें राष्ट्रभक्ति और विदेशी शासन की निंदा दोनों का समन्वय प्राप्त होता है उनकी राष्ट्रीयता भी भूषण की तरह म्लेच्छों के प्रति तिरस्कार की भावना लिए हुए थी । उनके कुछ कजरी व होली गीतों में इस प्रकार की भावना मिलती है -

'अपने स्वारथ भूले लुभाए, काहे कटवा बुलाए जयचंदवा ।
अपने हाथ से अपने कुल के, काहे ते जड़वा कटाए जयचंदवा ।
फूट के फल सब भारत बोए, बैरी की राह खुलाए जयचंदवा ।
और नासि तै आपौ बिलाने, निज मुख कजरी पुताय जयचंदवा ।'

पं. प्रतापनारायण मिश्र जी ने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का नारा बुलंद कर हिन्दू जाति को जागृत करने का प्रयत्न किया -

'चहहु जौ साचहु निज कल्यान, तौ सब मिलि भारत संतान ।
जपौ निरन्तर एक जबान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।

राधा चरण गोस्वामी जी ने भी स्वदेश भक्ति के साथ देश की दुर्दशा का वर्णन व अतीत का स्मरण किया है –

'मैं हाय हायदेधाय पुकारौ कोई, भारत की डूबी नाव उबारो कोई ।
उड़ गए वेद के बादवान अति भारे, ऋषि जन रस्सा नहिं रहे खेंचन घटे।
यामें चिंतामणि सदृश रत्न की ढेरी, यामें अमृत सम औषधीन की फेरी।
वह चली सकल यूरोप हाय मति मोई, भारत की डूबीनाव उबारो कोई ।'

द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, गिरिधर शर्मा, उमाशंकर त्रिवेदी, चंडिका प्रसाद, रामरणविजय सिंह, श्री मुन्नी लाल, मन्नन द्विवेदी तथा राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने देश भक्ति के गीत लिखे हैं । इस युग के देश भक्ति के सबसे प्रसिद्ध गायक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त रहे जिन्होंने अपने गीतों द्वारा राष्ट्रीय जागरण का शंख फूंका। अपनी मातृभूमि से उन्हें असीम स्नेह था –

'जय जय भारत भूमि भवानी ।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बरवानी ।
तेरा चंद्रवदन वट विकसित शांति सुधा बरसाता है,
मलयानिल विश्वास निराला नवजीवन सरसाता है ।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी ।
जय जय भारत भूमि भवानी ।'[7]

वर्तमान युग के साहित्यकारों में राष्ट्रगीत लिखने वाले माखनलाल चतुर्वेदी, गोपाल शरण सिंह, सोहन लाल द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, पंत, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंश राय बच्चन, महाकवि निराला, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', श्याम नारायण पाण्डेय, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालेश्वर गुरू आदि ने राष्ट्रभक्ति पूर्ण गीत लिखे हैं । माखन लाल चतुर्वेदी ने 'पुष्प की अभिलाषा' गीत में मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाने की प्रेरणा दी है –

'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंधा प्यारी को ललचाऊँ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक ।'[8]
जयशंकर प्रसाद के भी कुछ गीत राष्ट्र वंदना व देशप्रेम विषयक हैं –
'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,

स्वयंप्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो ।'

राष्ट्रीय कवियों में लोकप्रिय कवि सोहनलाल द्विवेदी ने अनेक देशप्रेम के गीतों की रचना कर नवयुवकों में नई प्रेरणा और स्फूर्ति उत्पन्न की –

'फूंको शंख, ध्वजाएं फहरें,
चले कोटि सेना, घन घहरें ।
मचे प्रलय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

महाकवि निराला ने भी राष्ट्रभक्ति पूर्ण गीत लिखकर भारत स्तुति की है –

'भारती जय विजय करे, कनक-शस्य कमल धरे ।
लंका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल स्तव कर बहु-अर्थ-भरे ।
तरू-तृण-वन-लता वसन, अंचल में रवचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल - कण, धवल धार गले ।'[9]

सुमित्र नंदन पंत ने भारत वंदना गीत में भारत माता को ग्रामवासिनी संबोधित किया है –

भारतमाता ग्राम वासिनी ।
खेतों में फैला है शयामल,
धूल भरा मैला सा आंचल,
गंगा यमुना में आंसू-जल,
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी ।[10]

सुभद्रा कुमारी चौहान का स्थान राष्ट्रीय कवियों में महत्वपूर्ण है । उन्होंने 'झांसी की रानी' कविता में प्रथम स्वाधीनता संग्राम के चित्र प्रस्तुत किए हैं । यह कविता गीत के रूप में जन-जन की प्रिय है । इसके अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रभक्ति के अनेक गीत लिखे हैं । उनका एक प्रसिद्ध गीत दृष्टव्य है –

वीरों का कैसा हो बसंत ?
आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बारबार,
प्राची पश्चिम भू-नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग् दिगन्त ।

वीरों का कैसा हो बसंत ?

हरिवंश राय 'बच्चन' ने अपने 'गीतों' में वीरों को अग्निपथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है –

अग्निपथ ! अग्निपथ ! अग्निपथ !
वृक्ष हो भले खड़े
हो घने हों बड़े
एक पत्र छांह भी
मांग मत ! मांग मत ! मांग मत !

नरेन्द्र शर्मा ने अपने राष्ट्र भक्ति के गीत में वीरों को हिमालय की भाँति शक्तिशाली बनने की प्रेरणा दी है –

हर शक्ति हिमालय बन जाये ।
हर व्यक्ति हिमालय बन जाये ।
किस किसको लांघेगा दुश्मन ।
हम खड़े हुए, दुश्मन आए,
हर व्यक्ति हिमालय बन जाए ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य में चारण काल से लेकर आधुनिक युग तक राष्ट्रगीतों की विकासधारा निरन्तर चल रही है । आज राष्ट्र गीतों के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण आया है, जिससे भारतीय संस्कृति का नव निर्माण हो रहा है । अब कवियों ने राष्ट्रीयता से अंतर्राष्ट्रीयता तक कदम बढ़ाए हैं । उनके गीतों मे अब कष्ट सहन करके राष्ट्र को समृद्ध करने की भावना जागृत हो रही है । राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय एकता के स्वर गीतों में गूंज रहे हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चुने हुए राष्ट्रीय गीत – भूमिका – डॉ. मीना अग्रवाल, 2. हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास – डॉ. के.के. शर्मा, 3. गोरा बादल कथा – जटमल, 4. हमीर हठ – चंद्रशेखर, 5. भारतेन्दु ग्रंथावली – दूसरा खंड, 6. भारत स्तव – श्रीधर पाठक, 7. मंगलघट – मैथिलीशरण गुप्त, 8. पुष्प की अभिलाषा – माखनलाल चतुर्वेदी, 9. गीतिका – सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 10. ग्राम्या – सुमित्रनंदन पंत

संदर्भित कवि :-

1. हेमचंद, 2. शारंगधर, 3. चन्दवरदायी, 4. जगनिक, 5. नामदेव, 6. तुलसीदास, 7. दुरसाजी, 8. जटमल, 9. भूषण, 10. बदरीनारायण चौधरी, 11. पं.प्रताप नारायण मिश्र, 12. राधाचरण गोस्वामी, 13. जयशंकर प्रसाद, 14. सोहनलाल द्विवेदी, 15. सुभद्राकुमारी चौहान, 16. हरिवंशराय बच्चन, 17. नरेन्द्र शर्मा

अनिल कुमार पाण्डेय, शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
मो. : 8528833317

मीडिया समाज और हिन्दी

अनिल कुमार पाण्डेय

तब, जब मानव अपने प्रारंभिक अवस्था में था, मानसिक दृष्टि से विकसित और उन्नतिशील न होने की वजह से, शिक्षा का प्रचार प्रसार विभिन्न मानवों तथा मानव समूहों द्वारा निर्मित समाज में उतना नहीं था, उस समय संदेशों के ये माध्यम ताम्रपत्रें शिलालेखों तथा विभिन्न प्रकार के जीवों, पक्षियों, हवा, बादल और शारीरिक संकेतों, लोक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजो में व्याप्त अन्यान्य प्रकार के व्यवहारों द्वारा एक-दूसरे की स्थिति जानने तथा उन्हें सूचनाओं के माध्यम से जोड़कर सामाजिक संरचना को आगे बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाते थे।

मानव सभ्यता के इतिहास में मानवीय परिवेश के अन्तर्गत जीवन यापन करने वाले प्रत्येक प्राणी को समझने, जानने तथा उनके गुण और दोशों को एक हद तक आत्मसात् कर विकसित सामाजिक अवस्था प्राप्त करने की एक सुदीर्घ परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। ''संसार के हम होवे, संसार हमारा हो'' की स्थिति को बनाये रखने का हिमायती, 'वसुधौव कुटुम्बकम' की भावना का आग्रही, और 'मनुष्य वही है जो मनुष्यता के लिए मरे' का पक्षधर भारतीय समाज सदा ही किसी न किसी रूप में लोगों के बीच संवादात्मक व्यवस्था के माध्यम से अपनी उपस्थिति कायम रखने के लिए, एक दूसरे के सुख-दु:ख, गम-विपदा, स्थिति-परिस्थिति में अपनी सक्रिय भागीदारी द्वारा जीवन-संघर्षों के निमित्त उनकी हौसला और उत्साह बढ़ाने के लिए तथा मानव-समाज की उन्नति और विकास में सम्पूर्ण जन-समुदाय के आचार-विचार-व्यवहार और संस्कार की एक समन्वयशील परम्परा को विकसित करने के लिए, खोजी और जिज्ञासु प्रकृति का यह मानव किसी न किसी साधन को एक माध्यम के रूप में अपनाता आया है। ये साधन उनकी

आशाओं और आकांक्षाओं को पूरित और प्रतिफलित करते हुए उनके जीवन को सुंदर-प्रवाह में संचरित होने और विकास की समस्त सम्भावनाओं को सहज रूप में प्राप्त कर मानसिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से सबल बनाने में उनकी सहायता करते आए हैं। एक-दूसरे को जानने, समझने और उनके साथ संवादात्मक व्यवस्था को कायम कर भाईचारे की भावना को विकसित करने वाले इन्हीं साधनों को आज 'मीडिया' अथवा माध्यम के रूप में जाना जाता है।

तब, जब मानव अपने प्रारंभिक अवस्था में था, मानसिक दृष्टि से विकसित और उन्नतिशील न होने की वजह से, शिक्षा का प्रचार प्रसार विभिन्न मानवों तथा मानव समूहों द्वारा निर्मित समाज में उतना नहीं था, उस समय संदेशों के ये माध्यम ताम्रपत्रें शिलालेखों तथा विभिन्न प्रकार के जीवों, पक्षियों, हवा, बादल और शारीरिक संकेतों, लोक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजो में व्याप्त अन्यान्य प्रकार के व्यवहारों द्वारा एक-दूसरे की स्थिति जानने तथा उन्हें सूचनाओं के माध्यम से जोड़कर सामाजिक संरचना को आगे बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाते थे। मीडिया-परम्परा की ये स्थिति हिन्दी साहित्य में ही व्याप्त कई उदाहरणों में देखा जा सकता है। जायसीकृत पद्मावत में राजा रत्नसेन के सन्यासी होने में हीरामन तोता की सक्रिय भागीदारी होती है। नागमती उस तोते को ही दोशी ठहराती है ''सुवा काल होइ लेइगा पीऊ'' यदि वह पद्मावती की सुन्दरता का संदेश रत्नसेन को न देता तो वह सन्यासी होता ही क्यों? रत्नसेन तक अपनी विरह-व्यथा का संदेश पहुंचाने के लिए नागमती 'कौवे' और 'भौरे' को अपना माध्यम बनाती है, ''पिउ सो कहेउ संदेसणा, हे भौरा हे काग, सोधनि विरह जरि मुई तेहिक धुंआ हम लाग।'' रीतिकाल के प्रख्यात कवि और प्रेम की पीर के रूप में प्रसिद्ध घनानन्द अपने हृदय की पीड़ा से अपनी प्रेयसी सुजान को अवतगत कराने के लिए बादल को माध्यम बनाते हैं-

''घनआनंद जीवन दायक हो, कछु मेरियो पीर हियै परसौं
कबहूँ वा विसासी सुजान के आंगन मों अँसुआनि हूँ लै वरसौं।''[11]

वहीं राधा की विरह-व्यथा की सूचना कृष्ण को देने के लिए 'हरिऔध' जी ने 'पवन (हवा) को दूतिका रूप में माध्यम बनाया-

''मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्रवाले
जाके आए न मधुबन से औ न भेजा संदेशा
मैं रो रो के प्रिय विरह से बावली हो रही हूँ
जाके मेरी सब दुःख-कथा, स्याम को तू सुना दें।''[12]

फिर ''जा कबूतर जा, पहले प्यार की पहली चिट्ठी साजन को दे ओ हिन्दी फिल्मों से होते हुए क्या आज हमारी परम्परा, संस्कृति और व्यवहार में ये माध्यम वर्तमान नहीं है? आज भी ग्रामीणांचलों में भौरों को आरीपास मंडराते, 'शुकुलाइन पक्षी' को पेड़ की डालों पर बोलते, 'कौवो' का आपस में चोंच भिड़ाते या 'दाईं-बाईं आँखों' को फड़कते देखकर वहां के लोगों द्वारा

सहज ही अंदाजा लगा लिया जाता है कि कुछ शुभ या अशुभ होने वाला है या कोई याद कर रहा है अथवा कहीं से कुछ आने वाला है। पर आज सभ्यता विकास के साथ-साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस युग में संचार और संदेशों के ये माध्यम पूर्णतः परिवर्तित होकर समाचार पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन, रेडियो, इंटरनेट, मोबाइल आदि प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के रूप में हमारे सामने आए हैं। यह इन्हीं उपकरणों की देन है कि आज का पूरा परिवेश ही वैश्विक रूप धारण कर मीडिया-क्रान्ति, जनसंचार-क्रान्ति अथवा सूनचा-क्रान्ति के रूप में प्रतिस्थापित किया जा रहा है। जो इतना जीवंत प्रभावक और आकर्षक है कि सूचना प्राप्ति के वे पारम्परिक स्रोत या माध्यम गुजरे जमाने की पहेली सा लगने लगे हैं। अर्थात् मानवीय-सभ्यता-विकास की सम्पूर्णता अब इन उपकरणों में इस तरह समाहित और समन्वित हो गये हैं कि इनसे अलग अपने स्तित्व की परिकल्पना करना ही बेइमानी है। आज इनका स्तित्व हमसे नहीं बल्कि हमारा इनसे जोड़कर देखा जाने लगा है। अब तक जिस व्यक्ति-समाज ने इन माध्यमों का निर्माण किया आज वही माध्यम उस व्यक्ति समाज की संरचना नये तरीके से, उस व्यक्ति को अपना उपकरण बनाकर कर रहे हैं। कमोवेश यही स्थिति भाषा की भी है। वह भी अपनी पारम्परिक छवि खोकर माध्यमों के आवरण में नवीनता को धारण कर रही है। संकेत जिसका सन् 1873 ई0 के आसपास ही भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने ''हिन्दी नये चाल में ढली'' कहकर दिया था। और क्योंकि सवाल ''मीडिया समाज और हिन्दी'' का है। भारतीय सामाजिक परिवेश और भाषाई-संस्कृति पर मीडिया के शुभ-अशुभ अथवा अच्छे-बुरे प्रभाव का है। अतः यह आवश्यक है कि इसे दो मुख्य बिन्दुओं, 'मीडिया और समाज' तथा 'मीडिया और हिन्दी' में विभाजित करके विश्लेशित किया जाय।

मीडिया और समाज

आज, वर्तमान समय के इस दौर में समाज एक ऐसी स्थिति से गुजर रहा है जहां किसी भी वस्तु-स्थिति को अंतिम सत्य मान लेना संभव नहीं है। समाज जो मनुष्य की सांस्कृतिक दृष्टि का फलक है और जो वैचारिक नवीनता पर अपनी सभी संभावित विकासशील प्रवृत्ति को निर्भर करता है, वह बहुत गहरे में मीडिया अथवा संचार माध्यमों द्वारा परिचालित पोशित और प्रचारित किया जा रहा है। आज व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो, प्रत्येक वर्ग अपने परिवेश में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को, चाहे वह राजनैतिक कारणों की वजह से हो या फिर हो सामाजिक विसंगतियों की उपज, इन्हीं माध्यमों की निगाह से देखने, सुनने या जानने की कोशिश करता है। और क्योंकि इन माध्यमों की पहुँच भी क्षण या एक क्लिक मात्र पर सम्पूर्ण परिदृश्य को सामने रख देने की क्षमता से सज्जित है, मानव-मन पर इन माध्यमों का स्थायी प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक हो गया है। इसलिए आज संचार माध्यम और उसकी बहुआयामी सामाजिक भूमिका पर एकांगी दृष्टिकोण से नहीं सोचा जा सकता। एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में ही संचार-संसार की पड़ताल की जा सकती है। खासतौर से एक ऐसे दौर में, जब परम्परागत संचार माध्यम लुप्त प्राय है या हाशिये पर फेंक दिये

गये हैं और उनका स्थान हाईटैक और सुपर स्पीड के माध्यम ले रहे हैं तब सूक्ष्म व बृहतस्तरीय समाजों के साथ इनके पेचीदे रिश्तों को समझना एक चुनौती व जोखिम भरा काम है।'[3]

यह इसलिए भी कि, भारतीय परिवेश में जीवन यापन करने वाले समूहों में एक तरफ वह वर्ग है जो हर स्थिति से सबल और सक्षम है जबकि दूसरी तरफ एक ऐसा वर्ग है जो असहाय और निरीह है। सामाजिक परिवेश में यह स्थिति तब भी थी जब मीडिया के ये माध्यम अपने शैशवावस्था में थे और वही स्थिति आज भी वर्तमान है जब मीडिया अपनी विकसित अवस्था में है। सवाल ये है कि क्या समाज का यह अन्तराल, दो विरोधी समाजों का पारिवेशिक मतभेद, जो लम्बे समय से, अमीर-गरीब पूँजीवाद और सर्वहारा-वर्ग के रूप में परिभाषित होता आया है, मीडिया द्वारा खत्म किया जा रहा है? या फिर इनको और भी विस्तारित होने में इन माध्यमों द्वारा सहायता की जा रही है? यह समझना वर्तमान समय में एक चुनौती व जोखिम भरा काम इसलिए भी है कि आज के इस अत्याधुनिक समाज में सूचना माध्यमों के विकसित तकनीकी क्रान्ति के बावजूद सूचित और अनुसचित जाति बने हैं। 'सूचना नियंत्रक' और 'सूचना उपभोक्ता' समाज बने हैं। इसका अर्थ है कि पूँजीवादी समाज में मीडिया पूँजीवाद की विभक्ति का पूरक हो रहा है।'[4] वह उनकी दयालुता, कृपालुता और महिमामय प्रभुता-प्रसाद की अभिलाषा में मानव समाज के एक बहुत बड़े भाग को इस तरह विस्मृत और नजरअंदाज कर रहा है लगता है वे इस समाज के अंश हैं ही नहीं। जहां आमजन के बड़े से बड़े वारदात या घटनाएँ इनके लिए कोई महत्व नहीं रखते वहीं पूँजीवादी संस्कृति के पोशक जनों के एक-एक पल को खबर का हिस्सा बनाने के लिए, यथा-वे क्या पहनते हैं? क्या खाते है? सोते हैं कब? कब जागते हैं? कब निकलते हैं और जाते है कहां, अर्थात् उनके नितांत वैयक्तिक क्षणों को भी ये मीडिया खबर का रूप देने के लिए, उत्साहित और कतारों में खड़े दिखायी देते हैं। 'सिद्ध विनायक' मंदिर में अमिताभ बच्चन और अभिषेक-ऐश्वर्या का पहुँचना, मीडिया के लिए बड़ी खबर है तो शिल्पा शेट्टी पर नस्लभेदी टिप्पणी होना उससे भी बड़ी खबर, भारतीयता के स्तित्व का सवाल है। जबकि उन्हीं विदेशों में हजारों भारतीय इन सवालों से रोज ही दो-चार होते हैं, कितने तो आत्महत्या तक कर लेते हैं, पर इनकी संवेदना और वेदना इनकी मीडिया के लिए आम बात है, घटनाएं हैं रोज की, कोई खबर नहीं।

राजनीतिक गलियारों में चक्कर काटना, उनके मुद्दों को आवाज देना, उनकी रुचि या अरुचि को जन-सामान्य के बीच रखना, सहमति या असहमति पर एक लम्बी-चौड़ी बहस का आयोजन करना, आज की मीडिया का मूल कर्तव्य बन गया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से लेकर प्रिंट मीडिया तक इस बात के लिए गहरी चिन्ता में डूबे रहे हैं और आज भी हैं कि पंजाब में 'भाजपा और अकाली दल' के बीच टूटते गठबंधन कौन सा राजनीतिक मोड़ लेंगे? उत्तरप्रदेश में सपा की बदहाली और बसपा के जातीय समीकरण की श्रृंखला टूटने के बाद, कौन सा दल सत्ता में वापसी

करेगा? दिल्ली की सत्ता पर किसका अधिकार होगा? होगा कौन वारिस भंवर में डूबती कांग्रेस का या जनता किसको पहनायेगी ताज जम्मू कश्मीर में? पर उस जनता का जो इन सबका नियामक है, मीडिया और सत्ता दोनों का, कहीं कोई खोज नहीं, कोई खबर नहीं। ''पिछले तीन-चार सालों में सैंकड़ों किसानों ने ऋण ग्रस्तता एवं भूख से तंग आकर आत्महत्या की है। उड़ीसा के काला हांडी के जिले में आज भी भूख से मौते होती हैं। दहेज के भय से लड़कियाँ आत्महत्यायें की हैं और दहेज-हत्यायें होती हैं। क्या हमारे दोनों प्रमुख माध्यम ऐसी घटनाओं पर सघन साधन व विकसित फोकस डालते हैं? कितनी बार दूरदर्शनों के चैनलों पर आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब आदि राज्यों के किसानों की आत्म हत्याओं की गाथा और उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।''[15] कितनी बार बारिस में डूबते घरों की, चू रहे छप्परों और अस्त-व्यस्त होते जीवन को बहस का मुद्दा बनाया गया? उन आदिवासियों, दलितों के अभिशापमय जीवन पर लम्बी-चौड़ी बहस का आयोजन किया गया? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर मीडिया मौन है। या यूं कहें कि यहाँ तक पहुँचने की कोशिश ही नहीं करते क्योंकि बहुत हद तक उन्हें ऐसा करने पर राजनीतिक आकाओं के कोप का भाजन बनना पड़ेगा। टी.आर.पी. की बढ़त कैसे होगी? विज्ञापनों से हाथ धोना पड़ेगा। आज मीडिया को इन अनछुए पहलूओं तक जाने की जरूरत है। ग्रामीणचलों में पहुँचकर उनकी दशा को ऊँचा उठाने के लिए, उनकी समस्याओं को केन्द्र बनाकर, उन्हें समर्थ बनाने में, सक्रिया भूमिका निभाने की आवश्यकता है। आज के परिवेश में मीडिया ही वह हथियार है जो इनके आशाओं और सम्भावनाओं को जीवित रखते हुए ऊँचा उठने और स्वयं को समर्थ बनाने में इनकी सहायता कर सकती है और यदि कृष्ण कुमार रत्तू जी की मानें तो कह सकते हैं कि ''आज के परिप्रेक्ष्य में जब मीडिया के तमाम बिन्दु समाज के बदलते हुए सरोकारों से जुड़ गये हैं तो समय आ गया है कि इन बिन्दुओं पर भी ध्यान दिया जाए जिनके द्वारा इन माध्यमों का सामाजिक दायित्व कहीं संचार के इस लोकतंत्रीकरण में एक वर्ग विशेष के लिए ही महफूज न हो जाएं। आज समय की मांग यह है कि आधुनिक संचार माध्यम उस संसार के सृजन की ओर ध्यान दें जो इस करोड़ों लोगों की आबादी वाले देश की एक बड़ी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है। अब समय आ गया है कि उन मानवीय मुद्दों को भी इन सामाजिक सरोकारों के साथ जोड़कर देखा जाए जिनका प्रचार-प्रसार इन संचार प्रसारण माध्यमों द्वारा किया जाता है।''[16]

समाज और मीडिया पर विचार करते समय एक बात और है कि समाज के साथ मीडिया का अन्तर्सम्बन्ध समन्वयात्मक दृष्टिकोण मात्र तक सीमित नहीं है। मनुष्य की आचरणिक और सांस्कृतिक वृत्तियां भी गहरे रूप से प्रभावित हुयी हैं। आज का यह समय पूर्ण रूप से टेलीविजन का है, इंटरनेट का है, मोबाइल का है और है फेसबुक, ट्वीटर तथा व्हाट्सएप का। इस सम्पूर्ण तकनीकी परिवेश को साइबर वर्ल्ड के रूप में ही जाना जा सकता है, जो किसी भी देश, काल, सीमा से परे है, व्यापक है, विस्तृत है इस हद तक कि मानव-मन की भावनाएं पूर्ण रूप से

स्वच्छन्द होकर विचरण कर रही हैं। यहां न तो कोई बंधन है और ना तो ही कोई अवरोध। हर कोई अपनी स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार स्वतन्त्र है, स्वच्छन्द है। अपने मनपसंद चैनल देखने के लिए, मित्र बनाने के लिए और संवाद स्थापित करने के लिए। ना कोई उम्र की सीमा और ना ही तो किसी स्थिति विशेष का लिहाज। नतीजा यह तकनीकी विस्तार का ही है कि जहां कभी इस भारतीय परिवेश में बड़े-छोटे, युवा-बुजुर्ग, स्त्री-पुरुष आदि के मध्य एक विशेष प्रकार का संवेदनात्मक अंतराल पाया जाता था, स्थिति विशेष का संकोच और आदरभाव पाया जाता था, आज वह परिवर्तित होकर सभी को एक ही परिवेश में, एक ही व्यवस्था के अन्दर, एक ही तरीके से सोचन, समझने और जीने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। परिणाम यह इन्हीं माध्यमों का है कि आज के इस स्वतन्त्र युग में पारिवारिक सम्बन्ध टूट रहे हैं। भाई-बहन, माँ-पुत्री, पिता-पुत्र सभी के बीच का रिश्ता नकली धागों से जुड़ा है। बड़े जहां सामूहिकता को बनाए रखना चाहते हैं, युवा वही वैयक्तिक स्वतन्त्रता को महत्व दे रहे है। सम्पूर्ण परिवेश एक गहरे धर्म संकट से जूझ रहा है। भारतीय परिवेश की आधारभूत पारम्परिक ढांचा इस तरह मीडिया-जाल में उलझकर विखण्डित होगी शायद ही किसी ने सोचा हो। सत्य है यह बात कि इन्हीं मीडिया तन्त्र में उलझकर मानवीय सम्बन्धों एवं संस्कारों को प्रेरणा देने वाले साहित्य के अर्थ बदल गये हैं। संस्कृति का चेहरा बदल गया है। भाषा का मानकीकरण टूटकर एक मिला जुला भाषाई संसार बना रहा है। समय की इस आँधी में मीडिया की इस सूचना की नई संप्रेशण क्रान्ति के इस विविधताओं से भरे सम्प्रेषण ने तकनीक को केन्द्र में ला दिया है। तथा मानव रिश्तों को हाशिये के बाहर कर दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि हम सबने इन सब परिस्थितियों में जीना भी सीख लिया है तथा इसको स्वीकार भी कर लिया है।[7] यह एक गहरे चिंता का विषय है जिस पर चिंतन, विमर्श, व्याख्यान की आवश्यकता भारतीय पम्परा और भारतीय जीवन-मूल्यों को जीवित रखने के लिए नितांत ही प्रासंगिक हो उठा है।

मीडिया और हिन्दी

मीडिया और समाज का अन्तर्सम्बन्ध व्यावहारिक रूप में गहरा और मजबूत तभी होगा जब इन दोनों के बीच संवादात्मक व्यवस्था को बनाये रखने वाली वह स्थिति, जिसे हम भाषा कहते हैं और जो पारस्परिक विचार-विनिमय का एक महत्वपूर्ण साधन है, अपने व्यावहारिक स्वरूप में प्रस्तुत होकर समाज विशेष में जीवन यापन करने वाले सभी वर्गों एवं समुदायों को अपना कहने और दूसरों को सुनने की क्षमता प्रदान कर सकेगी। भारत एक बहुआयामी तथा बहुभाषी समाज है। प्रत्येक की अपनी-अपनी स्थिति, अपना परिवेश, अपनी संस्कृति है। भाषिक संरचना की दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक प्रान्त की अपनी एक विशेष भाषा है। कहीं पंजाबी की प्रधानता है तो कहीं तमिल और तेलगू की। कहीं बांग्ला की मजबूती है तो कहीं मराठी या गुजराती की। पर, इन सब जगहों पर सबों द्वारा जो भाषा आसानी से समझी जा सकती है या जिसके माध्यम से दूसरे अन्य

प्रान्तों के निवासियों से भी, जहां हिन्दी प्रचलन नहीं है, संवाद स्थापित किया जा सकता है, नि:संकोच वह भाषा हिन्दी है। वजह यही है कि हिन्दी भाषा मात्र न होकर राष्ट्रभाषा है और आज के इस व्यापक परिवेश में, जब सम्पूर्ण विश्व ही एक गाँव के रूप में प्रतिस्थापित होने लगा है, हिन्दी को वैश्विक परिवेश से भी जोड़कर देखा जाने लगा है। अपने विशद रूप में हिन्दी आज साहित्य और विचार मात्र का माध्यम न होकर सांस्कृतिक और सामाजिक विकास की भाषा है। यह सूचना प्रौद्योगिकी और उद्योग की भाषा है। विज्ञान और अनुसंधान की भाषा है। भाषा है यह टेलीविजन, इंटरनेट, मोबाइल और मल्टीमीडिया की। हिन्दी आज यदि विकासशील से विकसित अवस्था को प्राप्त हुयी है और नित प्रतिदिन संसार-क्षेत्र में अपना दायर बढ़ा रही है, तो यह इन्हीं संचार माध्यमों की देन है। ''अगर ये तमाम माध्यम न होते तो वह अन्य भाषाओं के मुकाबले इतनी व्याप्ति वाली इतना विराट संचार करने वाली भाषा न बनी होती।''[8]

यह समझ आज के बुद्धिजीव वर्ग के एक बड़े भाग को कम ही आ रही है। वे हिन्दी भाषा को एक व्याकरणिक ढाँचे में फिट करके ही रखना चाहते हैं। किसी दूसरे भाषा के शब्दों का विशेषकर अंग्रेजी के प्रयोग इसके साथ जोड़कर किय जाए यह उन्हें बिल्कुल भी बर्दास्त नहीं। वे अपनी इस कट्टरपंथी प्रतिबद्धता के बीच शायद यह भूल ही जाते हैं कि ''भाषा जितनी उदार होगी और समय के साथ-साथ बदलती चली जाएगी, वह उतनी ही लोकप्रिय होगी। उसकी जीवन क्षमता उतनी ही अधिक हो जाएगी। संस्कृत और लैटिन भाषाओं का उदाहरण हमारे सामने हैं। इन भाषाओ ने अपने व्याकरण के चलते एक कठोर शुद्धतावादी रवैया अपनाया। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे ये भाषाएं विश्व-भाषाओं के मानचित्र में एक बिन्दु के रूप में सिमटकर रह गई। लिखने-पढ़ने की बात दूसरी है, बोलने की भाषा के रूप में इनकी जो स्थिति है, किसी से यह बात छिपी नहीं है।''[9] हिन्दी पर व्याकरणिक और शुद्धतावादी रवैया अपनाकर कहीं यही स्थिति तो नही पैदा की जा रही है? और यदि कहीं ऐसा हो भी गया फिर हिन्दी की क्या दशा होगी? उस एक व्यापक जनसमुदाय की भाषा क्या होगी जो अभी शैक्षणिक दृष्टि से निहायत ही कमजोर है? जहां का परिवेश अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को अपनाया हुआ है और सीख रहा है हिन्दी, शायद इसलिए कि यह हिन्दी उसके राष्ट्रीय स्मिता से जुड़ी हुई है और मान्यता दिया है भारतीय संविधान ने इस दृष्टि से कि राष्ट्रीय एकता बनी रहे। हिन्दी भाषा की इस स्थिति को बनाए रखने में रेडियो और टी.वी. चैनलों की अहम भूमिका रही है, इस बात से बिल्कुल भी इंकार नहीं किया जा सकता। भाषा के व्याकरणीय चौखटे में भले यह भाषा कहीं भी न टिकती हो, परंतु आज सच्चाई यह है कि आम-बोलचाल और कामकाज की भाषा ही हिन्दी भाषा है।''[10] आज रेडियो और टीवी चैनलों में कई तरह की हिन्दी नजर आती है। यदि कहा जाए कि हर चैनलों की हिन्दी अलग शैली वाली है तो अत्युक्ति नहीं होगी। वे अलग-अलग ढंग से हिन्दी पैदा करते हैं। कहीं बहुत चपल दनादन हिन्दी है तो कहीं मद्धिम गति वाली है। कहीं दोनों का मेल है तो कहीं एकदम सरकारी हिन्दी है।

कहीं विषेशण पड़ा हुआ होता है तो कहीं संज्ञा नाच रही होती है। हिन्दी खबर चैनलों ने बिना किसी कायदा किताब के अपने ढंग की स्वत: स्फूर्ति हिन्दी बनाई है। जिसके अपने जोखिम हैं, लेकिन इस विविधता के कारण हिन्दी की व्याप्ति बढ़ गई है। यह ऐतिहासिक घटना है। इसने हिन्दी का नया और बहुत बड़ा जनक्षेत्र तैयार किया है, जिसका नक्शा बनाना कठिन है। यह साहित्यिक हिन्दी नहीं है। यह बाचाल हिन्दी है, चपला चंचला हिन्दी है, अप्सरा हिन्दी है, बाजारी हिन्दी है लेकिन यही असली है।''[11] और इस असलियत को बनाए रखना ही हिन्दी के प्रति हमारी गहरी निष्ठा होनी चाहिए।

आज के परिदृश्य में मीडिया और हिन्दी के अन्तर्सम्बन्ध पर कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि बतौर भाषा के, हिन्दी के विकास की संभावनाओं पर पूर्ण विराम नहीं लगा है, लेकिन इन सम्भावनाओं को सच करने के लिए खुले ढंग से सोचने के साहस और अभूतपूर्व चुनौतियों से टकराने वाली कल्पनाशीलता की जरूरत है। एक तरफ हिन्दी संस्कृति में अंतर्निहित स्मिताबोध को नये सिरे से गढ़ना जरूरी है, तो दूसरी ओर हिन्दी में साहित्येतर विमर्श को सचेत, सायास ढंग से संभव करना। एक तरफ हिन्दी का बोलियों से सबंध दृढ़तर करना जरूरी है, तो दूसरी तरफ उपभोक्ता संस्कृति की बोली 'हिंग्लिश' के साथ संवाद करना। एक तरफ 'शुद्ध हिन्दी' के हास्यास्पद बल्कि खतरनाक मिथक को तोड़ना जरूरी है तो दूसरी तरफ उस मानस की निर्मम समीक्षा करना जो हिन्दी की शिक्षा के जरिये पहली कक्षा से लेकर पी.एच.डी. की उपाधि तक गढ़ा जाता है।''[12]

संदर्भ सूची :-

1. द्रष्टव्य- वर्मा, डॉ0 सहदेव, धनानंद काव्य-दर्शन, नई दिल्ली : अभिनव प्रकाशन, पृ0-112
2. 'हरिऔध', अयोध्या सिंह उपाध्याय, प्रिय प्रवास, (शष्ठ सर्ग) पृ0-64
3. जोशी, रामशरण, मीडिया-विमर्श, नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2008, पृ0-14
4. पचौरी, सुधीश, उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन (भूमिका), पृ0-8
5. जोशी, रामशरण, मीडिया-विमर्श, नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2008, पृ0-19
6. रत्तू, डॉ0 कृष्ण कुमार, विश्व मीडिया बाजार, पृ0-31
7. रत्तू, डॉ0 कृष्ण कुमार, ग्लोबल मीडिया टेलीविजन, जयपुर : पोइन्टर पब्लिशर्स, पृ0 5-6
8. पचौरी, सुधीश, उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ0-8
9. प्रो0 हरिमोहन, आधुनिक जनसंचार और हिन्दी, नई दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन, पृ0-141
10. द्रष्टव्य-दूरदर्शन : हिन्दी के प्रयोजनमूलक विविध प्रयोग (डॉ0 कृष्ण कुमार रत्तू का कथन), 1997, पृ0-321
11. पचौरी, सुधीश, उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ0-154
12. हिन्दी नई चाल में ढली, संपादक-पुरुषोत्तम अग्रवाल, संजय कुमार, देशकाल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका (पुरुषोत्तम अग्रवाल), पृ0-7

डॉ. इन्दु दत्ता तिवारी, असिस्टेंट प्रोफेसर, दयाल सिंह सांध्य कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय।

समाचार पत्रों की बदलती भाषा

(14वां अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन विशेषांक)

डॉ. इन्दु दत्ता तिवारी

समय के साथ-साथ समाज और भाषा में भी परिवर्तन होता चलता है। प्रत्येक समाज के विकास के साथ उसकी भाषा उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित होती है। भाषा को समय और समाज की तात्कालिक जरूरतों के साथ बदलना और सम्मिलित होना पड़ता है। भारतीय भाषाओं ने अपनी विकास यात्रा में कई चरणों को पार किया है। अपनी विकास-यात्रा में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि भाषा, अपभ्रंश भाषा और फिर हिंदी अर्थात् आज की मानक हिंदी का जो रूप हमारे सामने है उसका इतिहास बहुत पुराना है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच तीसरी जीवित और स्वतंत्र सत्ता भाषा है यह सभी बुद्धिजीवी जानते हैं। हम जो अनुभव करते हैं उसे इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि वह अधिक प्रभावशाली ढंग से संप्रेषणीय बन सके। अनुभव-संवेदना को अभिव्यक्त करने के लिए अनुकूल भाषा की तलाश करनी पड़ती है जिससे कथ्य अपना पूरा प्रभाव डालने में समर्थ हो सके। भाषा एकाएक नहीं अपने समूचे रूप में हमारे समक्ष खड़ी हो जाती है बल्कि उसको अपना स्वरूप बनाने में हजारों साल लग जाते हैं और फिर आगे उसके स्वरूप के कायम रहने की भी कोई निश्चितता नहीं रहती क्यों भाषा तो बहता नीर है।

मनुष्य भाषा का व्यवहार करता है क्योंकि वह एक चिंतनशील प्राणी है। अतः वह भाषा की सृष्टि अपनी बौद्धिक क्षमता के कारण करता है अर्थात् भाषा का सीधा संबंध उसकी चिंतन क्षमता से है। **डॉ0 रामविलास शर्मा** के अनुसार ''भाषा मनुष्य की संस्कृति के विकास का साधन है और स्वयं उस संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है।'' 1 **डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी** मानते हैं कि ''भाषा भावों की अनुगामिनी नहीं बल्कि भावों और संवेदनाओं की प्रकृति भाषा द्वारा अनुशासित होती है।'' 2

कोई भी रचनाकार अपने सृजन से पूर्व भी और पश्चात् भी भाषा का प्रयोग करता है। पहले वह भाषा समाज से ग्रहण करता है व बाद में अपने व्यक्तित्व को उसमें मिश्रित कर देता है पर उसी सीमा तक जहाँ तक कि उसकी भाषा समाज से संप्रेषण बनाये रखे। रचनाकार भाषा के बने बनाये साँचों को बनाता, बिगाड़ता व बदलता चलता है, उसमें नया अर्थ देता है। नये अर्थ भरने के लिए वह सामाजिक स्त्रोतों से ही सामग्री का चयन करता है।

समय के साथ-साथ समाज और भाषा में भी परिवर्तन होता चलता है। प्रत्येक समाज के विकास के साथ उसकी भाषा उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित होती है। भाषा को समय और समाज की तात्कालिक जरूरतों के साथ बदलना और सम्मिलित होना पड़ता है। भारतीय भाषाओं ने अपनी विकास यात्रा में कई चरणों को पार किया है। अपनी विकास-यात्रा में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि भाषा, अपभ्रंश भाषा और फिर हिंदी अर्थात् आज की मानक हिंदी का जो रूप हमारे सामने है उसका इतिहास बहुत पुराना है। हिंदी ने ऐतिहासिक और प्राकृतिक प्रक्रिया से गुजरकर एक सुनिश्चित तथा नियमित रूप ग्रहण किया है। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि हिंदी का मूल खड़ी बोली रूप शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित हुआ। भाषा के क्षेत्र में जो परंपरागत मौलिकता की मान्यता प्राकृत काल से चली आ रही है वही शौरसेनी अपभ्रंश की खड़ी बोली को प्राप्त हुई। इसके समानांतर ब्रज, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी आदि बोलियाँ अपने स्थानीय प्रदेशों में विकसित होती रहीं। हिंदी साहित्य के मध्यकाल में दो बोलियों ब्रज तथा अवधी ने भाषा का दर्जा प्राप्त किया। लेकिन विभिन्न प्रकार के समाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि कारणों से वे अपने सीमित क्षेत्र से बाहर इतनी अधिक प्रचलित नहीं हुई, जितनी की खड़ी बोली हुई है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में कई कारणों से खड़ी बोली के भाषा बन जाने की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी और कुछ समय बाद वह मानक भाषा हिन्दी के रूप मे परिणत हुई और फिर कालक्रम में खड़ी बोली को एक व्यापक जन समुदाय में संपर्क भाषा तथा मातृभाषा का स्थान प्राप्त हुआ।

इस प्रकार आज की हिंदी कभी एक बोली मात्रा थी पर अब हिंदी अपनी स्थानीय या क्षेत्रीय विशेषताओ से ऊपर उठ चुकी है। वह अपनी बोलियों तथा कुछ दूसरी भाषाओं जैसे अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्द-समूह या वाक्य-रचना आदि से संबंधित महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को आत्मसात् करके एक सशक्त तथा केंद्रीय भाषा बन चुकी है। मानक हिंदी भारत की सबसे अधिक व्यापक भाषा है अतः इसे राष्ट्रभाषा होने का गौरव भी प्राप्त है। **डॉ0 भोलानाथ तिवारी** के अनुसार ''हिन्दी वह भाषा है जो संस्कृत से पालि, अपभ्रंश होते हुए विकसित हुई है। हिन्दी का ऐतिहासिक विस्तार काफी बड़ा है। वह लगभग एक हजार वर्षों (1000 ई0) से आज तक फैला है।''3 उन्होंने हिंदी भाषा के विकास को तीन कालखण्डों में विभाजित किया है (क) आदिकाल (1000 ई0पू0 से 1500 ई0) (ख) मध्यकाल (1500 ई0पू0 से 1800 ई0) (ग) आधुनिक काल (1800 ई0पू0 से अब तक)।

आदिकाल में हिन्दी की विभिन्न बोलियों के व्याकरणीय अस्तित्व का आरंभ हो गया

था, किन्तु काफी व्याकरणिक रूप ऐसे थे, जो आसपास के क्षेत्रों में समान थे। **मध्यकाल** में उनमें इस प्रकार के मिश्रण में काफी कमी हो गयी। सूर, बिहारी, देव आदि की बंजभाषा तथा जायसी, तुलसी आदि की अवधी इस बात का प्रमाण हैं। **आधुनिक** काल तक आते-आते ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि कई बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व इतना स्वतंत्र हो गया है, कि उन्हें बड़ी सरलता से भाषा की संज्ञा दी जा सकती है।

''भाषा और अंतर्वस्तु में एक गहरा अंतः संबंध होता है। जब भाषा बदलती है तो अंतर्वस्तु भी बदलती है बल्कि यों कहें कि अंतर्वस्तु के बदलने से भाषा को भी बदलना पड़ता है। कुछ ऐसा ही हुआ 19वीं सदी के नवजागरण काल में जब ब्रज से खड़ी बोली में साहित्यिक भाषा का रूपांतरण होता है। इस दौर की सारी चेतना, जागृति, सुधारवादी चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय चेतना का एक सशक्त माध्यम बनाकर आम आदमी के सामने लाने का कार्य साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने ही किया। ब्रज से खड़ी बोली के स्थानांतरण की प्रक्रिया प्रकारांतर से मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर जाने की ही प्रक्रिया थी। वास्तव में पत्रकारिता की पाठशाला में ही साहित्यिक हिन्दी का निर्माण-कार्य संभव हो सका।''4

पठन-पाठन, लेखन-अध्यापन की तरह ही जनसंचार माध्यमों के लिए भी किसी भाषा का माध्यम के रूप में होना आवश्यक है। साहित्यिक भाषा के इतिहास के समानांतर जनसंचार माध्यमों की भाषा पर यदि दृष्टि डाली जाये तो हम देखते हैं कि प्रत्येक काल के जनसंचार माध्यमों की भाषा लगभग वही रही जो उस काल के साहित्य की थी क्योंकि प्रायः साहित्यकार ही पत्रकार होते रहे हैं।

हिन्दी पत्रकारिता की भाषा के विकास का आरंभिक दौर भारतीय स्वाधीनता संग्राम का भी शुरुआती दौर था। पत्रकारिता और हिन्दी अथवा खड़ी बोली के आरंभ का दौर भी वही था। हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य विद्वानों ने जहाँ हिंदी, साहित्य एवं भाषा के विकास में अपना योगदान दिया वही उनका जुड़ाव पत्रकारिता से भी था, अतः वे पत्रकारिता की भाषा का भी परिश्कार करते चले गए। हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव भले ही पं0 युगल किशोर जिन्हें हिन्दी पत्रकार कला का जन्मदाता भी कहा जाता है, के 'उदन्त मार्तण्ड' (30 मई, 1826) पत्र के प्रकाशन के साथ माना जाए पर भारतीय पत्रकारिता का जन्म इससे पहले ही हो चुका था। इस युग की समस्त पत्र-पत्रिकाएँ साहित्यिक थीं पर ये युग-सत्य को अभिव्यक्त कर रही थीं। इनका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय भावना जगाना, समाज-सुधार, हिन्दी भाषा और साहित्य का उन्नयन, आजादी प्राप्त करना और लोगों के मन में स्वदेशी चेतना जगाना था। भारतेंदु के युग में राजा राममोहन राय का 'बंगदूत' (1829), श्यामसुन्दर सेन का 'दैनिक समाचार सुधा वर्षण' (1854), भारतेंदु की 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' (1873), 'बालाबोधिनी' (1874), बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप' (1877) आदि पत्र-पत्रिकाओं का योगदान तथा फिर द्विवेदी युग में 'सरस्वती' (1900), 'अभ्युदय' (1907), 'कर्मयोगी' (1907), 'इन्दु' (1907), 'प्रताप' (1913), 'कलकत्ता समाचार' (1914) इत्यादि ने हिन्दी भाषा को परिश्कृत-परिमार्जित निरंतर किया। छायावादी युग में 1920 से 1930 तक का समय पुराने संस्कारों के प्रति विद्रोह और नवीन संस्कारों के बीजारोपण का समय रहा। गाँधी जी के

विचारों से प्रेरित होकर सस्ता साहित्य मंडल ने त्यागभूमि का प्रकाशन किया। इस समय के पत्रों में 'आज' (1920), 'संसार' (1944), 'संघर्ष' (1937), 'हंस' (1930), 'मतवाला' आदि प्रमुख थे। छायावाद के बाद स्वातंत्र्योत्तर काल आया जिसमें आगे चलकर जनसंचार माध्यमों के रूप में समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के साथ साथ रेडियो और टी0वी0 को भी लोकप्रियता मिली। इस काल में समाचार पत्रों सहित सभी जनमाध्यमों की भाषा हिंदी रही। ''हिन्दी की महत्ता को इसी बात से समझा जा सकता है कि जब राष्ट्रवाद की भावना को संपूर्ण भारत के लोगों में फैलाने के लिए अंत: प्रांतीय संपर्क की आवश्यकता महसूस की गई तब यह महसूस किया गया कि हिन्दी ही वह भाषा हो सकती है जिससे लोगों से संपर्क सूत्र जोड़ा जा सके। क्योंकि एक बहुभाषी देश में स्वाधीनता की चेतना को प्रत्येक गांव और प्रत्येक आदमी तक पहुँचाने के लिए, राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिए हिन्दी ही एकमात्र अस्त्र हो सकती है। राष्ट्र-निर्माण और भाषा-निर्माण की दोहरी प्रक्रिया एक-दूसरे के सहयोग से हो रही थी। हिन्दी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक बन चुकी थी। भाषागत विविधता की बाधा को पाटकर उसमें राष्ट्रीय एकता व स्वाधीनता के विचारों को अभिव्यक्त करने का समर्थ और सक्षम माध्यम हिन्दी बन चुकी थी।''5 संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में हिन्दी की भूमिका को पहचान कर ही उसे राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित किया गया।

भाषा के विकास के बाद अब जरा जनसंचार माध्यमों की भाषा पर भी संक्षिप्त दृष्टिपात कर लें। हम जानते हैं कि मानवीय संवेदनाओं के आदान-प्रदान से ही उसके समग्र जीवन-मूल्यों एवं संस्कृति का विकास होता है। वह अपने मन के भाव, विचार, संदेश, ज्ञान, सूचना आदि समाज तक पहुँचाना चाहता है। अत: समाज की गतिशीलता और मानवीय अभिव्यक्तियों के आदान प्रदान हेतु जनसंचार माध्यमों की शुरुआत हुई। जनसंचार माध्यमों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं - शब्द संचार माध्यम (समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, किताबें आदि) श्रव्य संचार माध्यम (रेडियो, कैसेट, ऑडियो सीडी, टेपरिकॉर्डर, टेलीफोन मोबाइल आदि), दृश्य संचार माध्यम (दूरदर्शन, वीडियो सीडी, फिल्म, कम्प्यूटर आदि)।

युगलकिशोर के 'उदन्त मार्तण्ड' की भाषा बोलचाल की, व्यंग्यपूर्ण तथा स्पष्ट थी। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार ''हिन्दी का पहला समाचार पत्र होने पर भी भाषा और विचारों की दृष्टि से सुसंपादित पत्र था।''6 सुकुल जी को हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, और ब्रजभाषा का काफी ज्ञान था इसलिए यह अत्यंत सुसंपादित था। कलकत्ता से अनेक हिंदी पत्र प्रकाशित हुए जिनमें 'बंगदूत', 'प्रजामित्र', 'सामदंत मार्तण्ड' व 'समाचार सुधवर्शण' इत्यादि प्रमुख थे। फोर्ट विलियम कॉलेज और ईसाई मिशनरी समितियों का हिन्दी गद्यशैली के विकास में बहुत योगदान रहा। 'बंगदूत' का प्रकाशन बंगला, फारसी और हिंदी में एक साथ हुआ। इसका अंग्रेजी संस्करण 'हिन्दू हेरल्ड' 16 पृष्ठों में छपता था। 'बनारस अखबार' जो 1845 में प्रकाशित हुआ, हिन्दी लिपि में प्रकाशित होता था पर इसमें अरबी-फारसी शब्दों की भरमार होती थी। पत्रकारिता ने राष्ट्रीयता के विकास के अनुकूल भूमि तैयार की। राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में प्रमुख पत्र 'पयामे आजादी' था जो दिल्ली से प्रकाशित होता था जिसका मराठी में झांसी से संस्करण प्रकाशित होता

था। 1857 के बाद के कुछ पत्रों की भाषा साहित्यिक भाषा से ओत-प्रोत नजर आयी। जिनमें 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता' इत्यादि थे।

1868 में भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित 'कविवचन सुधा' से पत्रकारिता के नये युग का सूत्रपात हुआ। **अम्बिका प्रसाद वाजपेयी** लिखते हैं कि ''वह समय अंग्रेजों के सामने हाथ जोड़े खड़े रहने का था।''7 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' का प्रकाशन उन्होंने 1873 को आरंभ किया और कुछ समय बाद इसका नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। यह हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। भारतेंदु युग में पत्रकारों और साहित्यकारों ने हिन्दी को साहित्यिक ही नहीं, जनसामान्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित भी किया। व्यावहारिक जीवन के प्रति अत्यधिक आग्रहों के कारण साहित्य का कलापक्ष न्यून हो गया था तथा भाषा भी अनलंकृत हो गयी। अत: ''भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता संघर्ष और जिजीविशा से उत्पन्न पवित्र कर्म था जिसने सामाजिक एवं राजनीतिक बदमाशियों, बेईमानियों और बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने का काम किया।'' यह हिन्दी पत्रकारिता का स्वर्ण युग था।''8

1890 में मराठी दैनिक 'केसरी' के संपादन का कार्य लोकमान्य तिलक ने शुरु किया। साहित्यिक पत्रिका के रूप में 1901 में 'सरस्वती' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हिंदी भाषा तथा साहित्य का निखार, परिष्कार और संवर्द्धन इस पत्रिका ने पूरी निष्ठा के साथ किया। 1920 के बाद का समय गाँधी जी का था। वे स्वयं पत्रकार थे और पत्रकारिता को वैचारिक क्रांति का सशक्त माध्यम मानते थे। उन्होंने 4 जून1903 में डर्बन से 'इण्डियन ओपिनियन' नामक पत्र का प्रकाशन किया। इस अखबार की भाषाएँ अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती और तमिल थी। अपरोक्ष रूप से गाँधी जी ही इसके संपादक थे। इस पत्र ने अफ्रीका व अन्य देशों में बसे प्रवासी भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति सजग किया व उनमें राष्ट्रीय चेतना व भावना जागृत की।

''जनसंचार व जनता के शिक्षण की दिशा में पत्रकारों ने जिस निष्ठा से आजादी की लड़ाई के दौरान कार्य किया था, वह निष्ठा या भाव या उद्देश्य स्वतंत्रता के बाद भारत में गायब हो गया। पूरी निष्ठा से स्वराज-प्राप्ति का जतन करने वाली हिंदी पत्रकारिता, आजादी मिलने के बाद स्वराज प्राप्ति के मार्ग से भटक गयी। निष्ठा पर व्यावसायिकता हावी हो गई। अखबारों पर संपादकों का कब्जा हो गया जो कि पूंजीपति या व्यवसायी होते हैं, जिनकी वजह से पत्र-प्रकाशन लाभ-हानि से जुड़ गया। भारत में 1974 से ही सर्वाधिक पत्र हिंदी में छपते थे उस समय हिंदी में जहाँ 3200 पत्र निकलते थे वहीं अंग्रेजी पत्रों की संख्या 2453 थी। युगीन भावबोध के साथ भाषा आंदोलन हिंदी की पत्र पत्रिकाओं द्वारा मुखरित हुआ। समाचार पत्रों की आवश्यकता समय की मांग के अनुसार बढ़ती गई।''9

जैसे-जैसे समाज का विकास हुआ घटनाओं का भी विकास हुआ। जहाँ एक ओर साहित्य की भाषा में तत्सम शब्दों की भरमार होती है व कार्यालय में पारिभाषिक शब्दावली की अधिकता होती है वहीं समाचार पत्रों की भाषा में आम बोलचाल के शब्दों का बाहुल्य होता है। समाचार पत्रों का दायरा नौकर से मालिक, अनपढ़ से शिक्षित तक अर्थात् असीमित होता है अत:

उसे भाषा के तौर पर सामंजस्य करके चलना होता है। मथुरा, दिल्ली या लखनऊ का जो पाठक आसानी से हिन्दी को नहीं समझ पायेगा उन पाठकों के साथ समाचार-पत्रों को तादात्म्य स्थापित करना होता है। 'अमर-उजाला' में जहाँ एक ओर ब्रज की प्रधानता मिलेगी तो वहीं 'राजस्थान-पत्रिका' में मारवाड़ी व मेवाती शब्दों की बहुलता मिलेगी, तो 'नयी-दुनिया' में मालवी शब्दों की अधिकता होगी।

आजादी के बाद जब हिन्दी पत्रकारिता अपनी नयी पहचान बनाने लगी तो शब्दों की अराजकता उसके सामने एक चुनौती के रूप मे आकर खड़ी हो गई। ''उस समय शब्दों को लेकर तीन विचारधारा के लोग थे -शुद्धतावादी धारा, हिंदुस्तानी धारा एवं समन्वयवादी धारा। शुद्धतावादी धारा के समर्थक प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के लिए हिंदी के शब्द चाहते थे तथा इन्हें भाषा के बीच में अंग्रेजी के एक भी शब्द का प्रयोग असहनीय था। हिंदुस्तानी धारा के समर्थकों ने बोलचाल की ही भाषा व शब्दों को अपनाये जाने पर विशेष जोर दिया। समन्वयवादी धारा के लोगों का मानना था कि यदि किसी समाचार पत्र में शुद्धतावादी विचारधारा के अनुसार भाषा का स्वरूप है तो वही स्वरूप सभी समाचारों का होना चाहिए। 'जनसत्ता' जैसे अखबारों की भाषा शुद्धतावादी धारा के अंतर्गत आ सकती है जबकि 'अमर-उजाला' और 'दैनिक जागरण' जैसे समाचार पत्रों में हिंदुस्तानी धारा अर्थात् अरबी-फारसी मिश्रित हिंदी का प्रयोग किया जाता है। 'नवभारत टाइम्स' जैसे अखबारों में अंग्रेजी शब्दों को अनेक हिंदी उच्चारण के साथ प्रयोग में लाया जाता है जैसे 'पार्लियामेण्ट', 'स्टूडेण्ट', 'टीचर', 'ट्रेन', 'ट्रैफिक जाम' आदि।''10 वास्तव में आज जिस तरह पत्रकारिता पर बाजार का नियंत्रण होता दिख रहा है, इसमें शब्दों की अराजकता से बचते हुए ऐसे शब्दों को अधिकाधिक बढ़ावा देना चाहिए जो स्थानीय व क्षेत्रीय भाषा के अटूट अंग हों। स्थानीय या क्षेत्रीय शब्द इतने ज्यादा भी न हों कि समाचार अपनी सार्वभौमिकता ही खो दे। कुशल संवाददाता यह समझ लेता है कि कौन-सा समाचार इन सीमाओं में सिमटा रहेगा और कौन-सा समसचार इन सीमाओं से बाहर निकलकर पूरे देश में पढ़ा, देखा व सुना जाएगा। कभी-कभी इन पत्रों में शब्दों के लिंग-भेद का पूरा ध्यान नहीं रखा जाता। 'का, की, था, थी इत्यादि का मनचाहा प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे 'उनका किताब प्रकाशित हुआ'। जबकि किताब एक स्त्रीलिंग शब्द है। इसी तरह अनुवाद करते समय भी बहुत सावधानी की जरूरत होती है। जैसे 'फ्लड इफेक्टिंग ऐरिया' की जगह 'बाढ़ प्रभावित इलाका' का अनुवाद अगर होता है तो वह गलत है। सही अनुवाद है 'बाढ़ग्रस्त इलाका'।'' भाषा में वह सहजता, स्वाभाविकता व संप्रेशणीयता होनी चाहिए जो सर्वग्राह्य हो। साथ-ही-साथ भाषा में कसाव भी होना चाहिए। आज अंग्रेजी का वाक्य-विन्यास उसके शब्द हिन्दी भाषा में अधिक प्रयोग किये जा रहे हैं जो केवल हिन्दी पाठक को डराते हैं। शुद्ध हिन्दी का प्रयोग गिनती की अखबारों में रह गया है। इन गिनती की अखबारों में भी कहीं-कहीं अशुद्ध हिन्दी मिल ही जाएगी। जैसे 'फर्जी कागजातों पर ऋण निर्गत' की जगह यदि 'फर्जी कागजातों पर ऋण दिया गया' लिखा हो तो सही हिन्दी होगी। समाचार पत्रों की भाषा में सहजता व निरंतरता का गुण होना जरूरी है। जैसे 'अग्नि' के स्थान पर 'आग', 'कदाचित्' के स्थान पर 'शायद', 'मृत्यु' के स्थान पर 'मौत' आदि शब्दों का प्रयोग भाषा की सहजता को बढ़ा देता है।

कभी-कभी देखा जाता है कि जो बात बहुत ही सीधे-सादे ढंग से बहुत ही थोड़े शब्दों में कही जा सकती है उसे जबरदस्ती इतना घुमा दिया जाता है कि उसमें जरूरत से ज्यादा विस्तार से अस्पष्टता और भद्दापन आ जाता है। एक समाचार-पत्र की भाषा का उदाहरण देखिये - 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़के की मृत्यु हो गयी।' इस वाक्य में 'दबकर' के स्थान पर 'दबने से' प्रयोग करना अधिक उचित होगा। या फिर लिखा जा सकता है कि 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़का मर गया।'11

अगर हम आज कहें कि हिन्दी प्रायः पूर्णतः एक वियोगात्मक भाषा हो गयी। प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिन्दी व्याकरण का रूप काफी स्थिर हो गया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है पर अपने ही देश में मंत्रालयों से जो जवाब आता है वह अंग्रेजी में आता है। सूचना के अधिकार के तहत जवाब अंग्रेजी में ही आएगा हिन्दी में नहीं। सवाल यह कि देश की भाषा कैसी हो। शुद्ध खड़ी बोली हिन्दी, संस्कृत के निकट, उर्दू के निकट या फिर अंग्रेजी के निकट क्योंकि समाचार पत्रों का दायरा बहुत ही विस्तृत होता है। हिन्दी बोलनेवालों की संख्या से कहीं ज्यादा संख्या है हिंदी समझने वालों की। अतः कुछ सूक्ष्म सुधारों द्वारा हम इसे लोकप्रिय बना सकते हैं। जैसे हमें शब्दों के रूप, अर्थ और उनके प्रयोगों को निश्चित करना होगा। विदेशी शब्दों का किस सीमा तक ग्रहण करें और किस तरह हिंग्लिश का त्याग करें यह भी समझना होगा। फिर जरूरत है नये शब्दों को गढ़ने हेतु कोश और व्याकरण समझने की। आज हिन्दी बाजार की भाषा बन गई है। जब तक हिन्दी रोजी-रोटी की भाषा नहीं बन पाती वह हमारे लिए अनिवार्य भाषा नहीं बन सकती। हिन्दी का उद्देश्य अन्य भाषाओं के साथ सापेक्ष का विमर्श है। हमें भाषायी संघर्ष नहीं करना है। अतः समाचार पत्रों की भाषा के बदलते स्वरूप एवं विकास के संबंध में आशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। जयशंकर प्रसाद के अनुसार-

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं॥

सन्दर्भ-सूची

1. रामविलास शर्मा : भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2008 (भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा की परंपरा लेख से), 2. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती, इलाहबाद, संस्करण 1986 (भाषा और संवेदना लेख से), 3. भोलानाथ तिवारी : भाषाविज्ञान एवं हिन्दी भाषा, किताबघर, नयी दिल्ली, संस्करण 1975 (अच्छी हिन्दी लेख से) पृ0 15, 4. डॉ0 मीना शर्मा : हिन्दी भाषा, मीडिया और सर्जनात्मक लेखन, पचौरी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2012, पृ0 47, 5. वही, 6. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण 2010, 7. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी : समचार-पत्रों का इतिहास, बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संस्करण 2010, 8. डॉ0 अजय कुमार सिंह : मीडिया की बदलती भाषा, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण 2012, पृ0 113, 9. वही, पृ0 121, 10. वही, पृ0 165, 11. वही, पृ0 166

आचार्य बलवन्त, हिन्दी विभागाध्यक्ष, कमला कॉलेज ऑफ मैनेजमेंट स्टडीस
405, ओ.टी.सी.रोड, कॉटनपेट, बेंगलूर–560053 (कर्नाटक)
मो. : 9844558064, 7337810240, ई–मेल : balwant.acharya@gmail.com

अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त हों

आचार्य बलवन्त

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के एक स्कूल का दौरा करने गईं। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा।

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही करता है। भाषा के अभाव में किसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान और इतिहास का आधार भाषा ही है। भाषा केवल विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम ही नहीं, वह नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संवाहिका भी होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। उसके शब्द परिवेश की आशाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं से संपृक्त होते हैं। भाषा की प्रकृति को पहचान कर ही उसके प्रवाह को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

लार्ड मैकाले भाषा की प्रकृति एवं व्यक्तित्व निर्माण में उसकी भूमिका को भलीभाँति समझता था। इस तथ्य की पुष्टि 2 फरवरी सन् 1835 को ब्रिटिश संसद में दिए गए उसके व्याख्यान से हो जाती है, जिसमें उसने कहा था- 'मैंने भारत के ओर-छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश को विजित कर लेंगे, जब तक कि हम इसके सांस्कृतिक एवं

नैतिक मेरूदण्ड को तोड़ न दें। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगें कि जो विदेशी और अंग्रेजी में है, वह उनके आचार-विचार से अच्छा एवं बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे तथा वे एक पराधीन कौम बन जाएंगे, जो हमारी चाहत है। लार्ड मैकाले की शिक्षानीति भारतीयों को उनकी भाषा से पृथक कर वैचारिक रूप से उन्हें पंगु बनाने की थी, उनके आत्मविश्वास को कमजोर करना था, जिसे हम नहीं समझ सके।

देश के गणतंत्र बनने के बाद भाषा की अहमियत हमें समझाने की कोशिश सोवियत रूस ने भी की थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को दृढ़ करने के उद्देश्य से एक भारतीय राजनयिक को सोवियत रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा गया, जहाँ उसने अपना कार्यभार ग्रहण पत्र अंग्रेजी में सौंपा। भारतीय भाषा में न होने के कारण वहाँ की सरकार ने उस पत्र को स्वीकार करने से मना कर दिया और याद दिलाया कि अंग्रेजी गुलाम भारत की भाषा थी, अंग्रेजी में पत्र प्रस्तुत करना उसी गुलामी का प्रतीक है। फिर किसी गुलाम देश के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने का कोई औचित्य ही नहीं बनता। भाषा के सवाल पर सोवियत रूस की यह फटकार भाषा के प्रति हमारी उदासीनता पर करारा प्रहार है।

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के एक स्कूल का दौरा करने गईं। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा। केवल एक बच्ची ही राष्ट्रगान सुना सकी। यह देखकर महारानी प्रसन्न हो गईं और उस बच्ची से कुछ माँगने के लिए बोलीं। बच्ची के मुँह से अचानक ही ये शब्द निकल पड़े- 'हमारी शिक्षा का माध्यम हमारी भाषा फ्रेंच बना दीजिए।' इसे कहते हैं अपनी भाषा के प्रति अनुराग।

भाषा की अस्मिता का प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। अंग्रेजी शिक्षानीति के चलते न केवल हिंदी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाएँ हाशिए पर आ गई हैं। इन दिनों भारतीय जीवन में व्याप्त पाश्चात्य प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो अंग्रेजी की देन है। खान-पान, रहन-सहन, पठन-पाठन एवं विचार-विमर्श ही नहीं, आज संबोधन एवं अभिवादन की भाषा भी अंग्रेजी हो गई है। बाजारवादी शक्तियाँ विज्ञापन के माध्यम से हमारे संस्कार को बिगाड़ने पर तुली हैं। किसी समाज के संस्कार को बिगाड़ने के तमाम कारणों में व्यक्ति की बोलचाल व व्यवहार की भाषा को बिगाड़ देना भी मुख्य है। आजकल के विद्यार्थियों के मन में अपनी भाषा के प्रति जो अनुराग होना चाहिए, उसका अभाव है। प्रायः देखने में यही आता है कि अध्यापक और अभिभावक भी हिंदी भाषा पर ध्यान कम ही देते हैं। आज के युवा कैरियर बिल्डिंग के नाम पर अपनी भाषा से विमुख होकर संस्कृति और सभ्यता से भी दूर होते जा रहे हैं।

हिंदी के प्रति नवयुवकों के मन में जो उदासीनता है, उसका एक कारण हिंदी को रोजगार की भाषा न बनाया जाना भी है। हिंदी को रोजगार से जोड़े बिना वर्तमान युवा पीढ़ी के मन में हिंदी के प्रति वह भाव नहीं जाग्रत किया जा सकता, जिसकी हम आशा करते हैं।

भाषा के प्रश्न को गंभीरता से लेते हुए उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम.एन. वेंकटचलैया और न्यायमूर्ति एस. मोहन की खण्डपीठ ने यह निर्णय दिया था कि प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इसलिए कि मातृभाषा में दी गई शिक्षा ही संस्कृति एवं परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। संविधान के अनुच्छेद 350 (ए) के अनुसार प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ जुटाने का उत्तरदायित्व राज्यों तथा स्थानीय निकायों का है। कर्नाटक सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेश को स्वीकार कर एक साहसिक व सराहनीय कार्य किया, हाँलांकि इसके क्रियान्वयन का अंग्रेजी मानसिकता के अभिभावकों ने जोरदार विरोध किया था, पर सरकार की दृढ़ इच्छा शक्ति के सामने उनकी चल न सकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त यह महसूस किया गया था कि एक संविधान, एक राष्ट्रध्वज एवं एक राष्ट्रगान की ही भाँति देश की एक राष्ट्रभाषा का होना भी आवश्यक है, क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र गूँगा होता है। हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए जिन राष्ट्रीय नेताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई उनमें महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। हिंदी को संपूर्ण भारत की व्यावहारिक भाषा बनाने के अभियान में गाँधीजी का योगदान अद्वितीय है। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा के प्रति अपने निश्चय को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है- ''मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को नुकसान पहुँचाना या मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रान्तों से पारस्परिक संबंधों के लिए हम हिंदी सीखें। ऐसा करने से हिंदी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्या में लोग जानते-बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो।'' सन् 1910 में गाँधीजी ने कहा था- ''हिंदुस्तान को अगर सचमुच राष्ट्र बनाना है तो राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो सकती है।''

सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधीजी ने हिंदी में भाषण देते हुए स्पष्ट घोषणा कर दी थी- ''हिंदी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।'' एक भाषा- एक लिपि विषयक इसी अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि हिंदी भाषा और देवनागरी का प्रचार-प्रसार देश हित एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना हेतु होना चाहिए। इस प्रस्ताव का समर्थन तमिल भाषा के मूर्धान्य साहित्यकार रामास्वामी आयंगार ने किया था। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समरसता को बनाए रखने में राष्ट्रभाषा की महत्ता को गाँधीजी ने अच्छी तरह से निरूपित किया है- हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करने में एक दिन भी खोना देश को भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुँचाना है। जिस प्रकार हमारी आजादी को जबरदस्ती छीनने वाले अँग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी यहाँ से निकाल बाहर करना चाहिए। देवनागरी के समान सरल, जल्दी सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई है ही नहीं। उर्दू और रोमन में भी वैसी सम्पूर्णता और ध्वन्यात्मकता नहीं है, जैसी देवनागरी लिपि में।''

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीयता का स्रोत मानते थे। उनका कहना था– ''कोई विदेशी भाषा हमारे देश की रक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्र के विकास के लिए स्वभाषा अनिवार्य है।'' उनके स्वभाषा का आशय हिंदी से ही था। टंडनजी न केवल हिंदी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक बनाए जाने के प्रबल पक्षधार थे। भाषा के साथ–साथ उसके सांस्कृतिक विकास पर भी उनका बल था। क्योंकि भाषा की संस्कृति ही उसे अपनी परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। भाषा का उसकी संस्कृति से गहरा संबंध है, संस्कृति शरीर है तो भाषा उसका प्राणतत्त्व।

इस बात को पुनः दोहराना चाहूँगा कि राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही किया जाने लगा था। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के प्रयासों से ही सितंबर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा के विषय पर विचार–विमर्श हुआ। 12, 13, एवं 14 सितंबर 1949 में संपन्न इस तीन दिवसीय सम्मेलन में उपस्थित 71 सदस्यों ने हिंदी

वह भाषा जो वन्देमातरम् एवं भारतमाता की जय के उद्घोष की उत्प्रेरिका रही हो, जिस भाषा ने भारतवासियों की सुप्त चेतना को झंकृत कर उनकी विलक्षणता का उन्हें बोध कराया हो, वह भाषा जो स्वतंत्रता सेनानियों के अधारों का क्रांति-गीत बनकर व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन का आह्वान करती रही हो, वह भाषा जो देश के विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच समन्वयात्मक समझ विकसित कर उन्हें आपस में जोड़कर रखने में समर्थ हो। जो भाषा देशवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मूलाधार हो, जो भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में लिखी–पढ़ी, समझी एवं सराही जा रही हो, जो निकट भविष्य में विश्व की संपर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर हो, उस हिंदी का अपनी ही भूमि पर अंग्रेजी के अनुवाद की भाषा बनकर निर्वासन की जिंदगी जीना दुखद ही नहीं, चिंताजनक भी है।

को राजभाषा बनाए जाने के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया एवं शासकीय प्रयोग हेतु भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को अपनाने की बात तय हो गई। हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने रखा और उसका समर्थन श्री शंकर राव ने किया, जो अहिंदी भाषी थे।

26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के दिन से 15 वर्षों तक हिंदी के साथ अंग्रेजी को भी संघ की सह राजभाषा के रूप में जारी रखने और उसके बाद हिंदी को पूरी तरह से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की योजना थी। पर ऐसा हो नहीं सका। नेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थपरता के चलते भाषा–प्रेमियों की

हिंदी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाने की चाहत भेदभाव की भेंट चढ़ गई। मतों के गुणा-गणित के आधार पर अपनी महत्वाकांक्षाओं को साधने के लिए देश के तथाकथित कर्णधारों ने जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद एवं क्षेत्रवाद की भाँति भाषा को भी वाद-विवाद का विषय बना दिया, जिसमें उलझकर हिंदी को उसका गौरव दिलाने का चिर प्रतीक्षित स्वप्न, स्वप्न बनकर ही रह गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उनहत्तर वर्ष बाद भी देश की एक राष्ट्रभाषा का न होना देश की अस्मिता एवं उसके आत्मगौरव के साथ खिलवाड़ नहीं तो और क्या है?

वह भाषा जो वन्देमातरम् एवं भारतमाता की जय के उद्घोष की उत्प्रेरिका रही हो, जिस भाषा ने भारतवासियों की सुप्त चेतना को झंकृत कर उनकी विलक्षणता का उन्हें बोध कराया हो, वह भाषा जो स्वतंत्रता सेनानियों के अधारों का क्रांति-गीत बनकर व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन का आह्वान करती रही हो, वह भाषा जो देश के विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच समन्वयात्मक समझ विकसित कर उन्हें आपस में जोड़कर रखने में समर्थ हो। जो भाषा देशवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मूलाधार हो, जो भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में लिखी-पढ़ी, समझी एवं सराही जा रही हो, जो निकट भविष्य में विश्व की संपर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर हो, उस हिंदी का अपनी ही भूमि पर अंग्रेजी के अनुवाद की भाषा बनकर निर्वासन की जिंदगी जीना दुखद ही नहीं, चिंताजनक भी है। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का उद्गार दर्शनीय है- ''राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाजमी है। अगर संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा।''

अंग्रेजों ने भारत को कई स्तरों पर कमजोर करने की साजिश रची थी। हिंदी और उर्दू के सवाल को हवा देकर सांप्रदायिक वातावरण को बिगाड़ने की उनकी कूटनीतिक चाल सफल भी हुई। सन् 1948-49 में भारत की 14 भाषाओं में 'हिंदुस्तानी' का प्रवेश उनकी कुटिल मंशा का ही प्रतिफल था। वह हिन्दुस्तानी समझौते की भाषा बनकर रह गई, जो बोलचाल के लिए उपयुक्त तो थी, पर उसमें साहित्यिक सामर्थ्य का अभाव था।

भारतीय संविधान लागू होने पर हिंदी को राजभाषा के रूप में मात्र घोषित कर 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी को राजभाषा का मान देते रहना और आशा रखना कि एक न एक दिन हिंदी राजभाषा का गौरव प्राप्त कर लेगी, कितना हास्यास्पद है। केंद्रीय गृहमंत्रालय द्वारा बनाए गए राजभाषा अधिनियम की धारा 3ध1 के अंतर्गत शासकीय प्रयोजनों में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में आगे भी जारी रखने का निर्णय लिया गया फिर राजभाषा अधिनियम की धारा 3ध2 के अन्तर्गत यह व्यवस्था दे दी गई कि जब तक भारत के एक भी राज्य की सरकार हिंदी को अपने राज्य की राजभाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगी, तब तक हिंदी संघ की राजभाषा के रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकती। राजभाषा अधिनियम के इस सशर्त समझौते ने हिंदी को संघ की सशक्त राजभाषा बनने के सारे रास्ते ही अवरूद्ध कर दिए। इसलिए कि दक्षिण भारत का एक राज्य तमिलनाडु हिंदी का प्रबल विरोधी है ही और पूर्वोत्तर स्थित नागालैंड अंग्रेजी को ही अपनी राजभाषा के रूप में अपना चुका है।

मैकाले द्वारा अपने होम सेक्रेटरी को लिखे गये पत्र की कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिसमें उसने कहा था- ''मैं नहीं कह सकता कि भारत राजनीतिक रूप से आपके अधीन रह पायेगा, लेकिन इतना मैं अवश्य करके जा रहा हूँ कि यह देश राजनीतिक स्वतंत्रता पा लेने के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकेगा।'' उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके।

दुर्भाग्य की बात है कि हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के प्रश्न पर देश की अन्य प्रान्तीय भाषाओं को इसके समानान्तर खड़ा करने की धृष्टता बार-बार की जाती रही है। बार-बार यह झूठी दलील दी जाती रही है कि हिंदी के राजभाषा बनने से देश की अन्य भाषाओं की अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी, जबकि अस्मिता के संकट का खतरा देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं को हिंदी से नहीं, बल्कि हिंदी और अन्य प्रांतीय भाषाओं व उनकी बोलियों को अंग्रेजी से है।

हिंदी राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है। समय की माँग है कि हम अंग्रेजी की मानसिकता का परित्याग कर भारतीयता के आदर्शों को अपनाएँ तथा हिंदी को भारतीय संस्कृति के विकास का संसाधन बनाएं। भारत को उसका खोया हुआ गौरव तभी प्राप्त हो सकेगा, जब यहाँ का हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपने कार्य, चिंतन-मनन व आपसी संवाद अपने ही देश की भाषा हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में करे। अपना हस्ताक्षर तो वह अपनी भाषा में ही करे एवं हिंदी को अपनी पहचान की भाषा बनाए। हिंदी के प्रति हीन भावना से मुक्ति का मार्ग हिंदी से निकलेगा। हिंदी हमारे राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए वरदान सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। हिंदी के माहात्म्य से संबंधित कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं-

जन सामान्य की भाषा हिन्दी।
जनमन की जिज्ञासा हिन्दी।
जनजीवन में रची बसी बन जीवन की अभिलाषा हिन्दी।
सेवा भाव सिखाती हिन्दी।
सबके मन को भाती हिन्दी।
सबके दिल की बातें करती
सबका दिल बहलाती हिन्दी।
स्नेह, शील, सद्भाव, समन्वय
संयम की परिभाषा हिन्दी।

मन्जू कुमारी, शोधार्थी, पता : रूम नं.–245, गोदावरी हॉस्टल, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067
मो. : 9871593794, ई–मेल : manjoo89jnu@gmail.com

वैश्वीकरण और वैश्वीकृत समाजिक परिदृश्य

विशेष संदर्भ: उपन्यास–मरंग घोड़ा नील कंठ हुआ, निर्वासन, काशी का अस्सी, दौड़ रह गई दिशाएँ इसी पार

मन्जू कुमारी

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के एक स्कूल का दौरा करने गईं। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा।

वैश्वीकरण ने हमारे आर्थिक जगत को प्रभावित करने के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक जगत को भी प्रभावित किया है। जिससे समाज का पूरा तंत्र प्रभावित हुआ है। वैसे देखा जाए तो वैश्वीकरण का मुख्य केन्द्र 'भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास' और पूरी दुनिया में बिना किसी रुकावट के 'सहज व्यापार प्रवाह' से सम्बन्धित है। जहाँ तक बाजार का प्रश्न है, वैश्वीकरण के पहले बाजार केवल मानव–जीवन से सम्बन्धित सीमित चीजों के लिए आवश्यक था और उस समय का बाजार केवल 'बाजार' की श्रेणी में आता था। जहाँ से सीमित साधनों की पूर्ति होती थी, लेकिन वहीं बाजार, आज बाजारीकरण की संज्ञा धारण कर चुका है। अब हम नहीं, वह हमें बताने लगा है कि क्या हमारे लिए जरूरी है और क्या नहीं।

आज 21वीं सदी में बाजार हम पर नहीं, हम बाजार पर आश्रित हो गए हैं। हमारी पसन्द न पसन्द सब बाजार तय कर रहा है। बाजार एक 'आर्थिक विचार' बना हुआ है, जिसका उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना है। उसे किसी के लाभ–हानि की कोई परवाह नहीं है।

वर्तमान समाज वैश्वीकृत समाज का रूप ले चुका है! क्योंकि उसके बिना जीवन अब सम्भव नहीं रहा। आज का व्यक्ति अपने समाज और परिवार में अपने विचारों के साथ जितना स्वतन्त्र हुआ है, उससे कहीं अधिक गुलाम। यह गुलामी कैसे समाज पर हावी होती जा रही है? उसे सूक्ष्मता से समझने का एक मात्र जरिया साहित्य है।

साहित्य के माध्यम से समाज की स्थिति और उसके द्वारा समाज व सामाजिक परिदृश्य को समझने में आसानी होती है। साहित्य और समाज का अनोखा रिश्ता है। आदिकाल से लेकर अबतक के समाज को जानने या समझने के लिए साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दूसरे शब्दों में कहे तो साहित्य, समय और समाज के साथ चलते हुए उन्नत भविष्य के सृजन का दूसरा

वैश्वीकरण का यह तीव्र दौर इसी तरह जारी रहा तो समाज और संस्कृति का यहाँ तक की प्रकृति का भी कोई यथार्थ बच नहीं पाएगा! क्योंकि यथार्थ दुनिया भयावह होती जा रही है, और समाज के लोग आभासी वास्तविकता (Virtual Reality & likes & Artificial Environment) को ही यथार्थ मानकर उसी दुनिया में खुश हैय उन्हें कल की कोई परवाह नहीं है और न ही वास्तविक दुनिया का भान वह करना ही चाहते हैं। वर्तमान समाज टैक्नोलोजी और मीडिया संचार की कैद में होते हुए भी वे अपने आपको सभी तरह से स्वतन्त्र महसूस कर रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि वह पहले की अपेक्षा आज ज्यादा कैद हुए हैं। और साथ ही साथ टैक्नोलोजी, संचार मीडिया के गुलाम भी। सूचना और तकनीक वैश्वीकरण के मुख्य वाहक के रूप में काम कर रहे हैं, जिसके माध्यम से विश्व की दूरी (एक स्थान से दूसरे स्थान की) काफी कम हुई है, लेकिन आपसी सम्बन्धों में एक-दूसरे के काफी करीब होते हुए भी दूरियाँ काफी बढ़ी हैं।

नाम है। जीवन की कोई भी समस्याधबिडम्बना साहित्य की परिधि से बाहर नहीं है। हर समाज का अपना सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वजूद होता है।

1990-91 के दौर में जब भारत आर्थिक संकट से गुजर रहा था। तब देश के विकास के लिए भारतीय अर्थ-व्यवस्था को दुनिया के सभी देशों के लिए 'मुक्त राष्ट्रीय व्यापार हेतु' खोलना पड़ा। जिसके अन्तर्गत उदारीकरण (Liberalization), निजीकरण (Privatization) और वैश्वीकरण (Globalization)-LPG ये तीनों शामिल हैं।

उदारीकरण (Liberalization) का तात्पर्य औद्योगिक विनिमय और बाजार का पूरी तरह से खोला जाना था, जिससे अर्थ-व्यवस्था में सरकार के बजाय बाजारी शक्तियाँ हावी हो सके। निजीकरण (Privatization) से तात्पर्य जब सार्वजनिक क्षेत्र की किसी संस्थाओं का राजकीय

हिस्सा निजी व्यक्तियों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है, जिससे उसका सार्वजनिक रूप समाप्त हो जाता है। उसे निजीकरण कहा जाता है। और तीसरा शब्द है- भूमण्डलीकरण (Globalization) जिसका सम्बन्ध विश्व के लिए सभी चीजों के आदान-प्रदान हेतु एक धरुवीय राष्ट्र की कल्पना से है।

वैश्वीकरण के इस दौर में अब किसी भी राष्ट्र के बीच कोई सीमा-रेखा नहीं रह गई है, और न ही किसी तरह के आवागमन में अवरोध। जिसके परिणाम स्वरूप पूँजी, श्रम, ज्ञान, विचार और टेक्निक का एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में बिना किसी अवरोध के (फ्री फ्लो रूप में) पूँजी व व्यापार को बढ़ावा मिल रहा है। विकासशील देश बहुत बड़ी मात्र में विकसित देशों की वस्तुओं के खरीददार बने हुए हैं। विकास के नाम पर वह अपनी वस्तुओं के माध्यम से मुनाफा कमा रहे हैं। भारत जैसे विकासशील देश वैश्वीकरण के नाम पर छलना के शिकार हो रहे हैं। जिससे हमारा सामाजिक परिदृश्य अछूता नहीं है। भारत में वैश्वीकरण टेक्नोलोजी और जन-संचार माध्यम से प्रवेश कर पूरे अकादमिक दुनिया को एक तरह से बहस (डिबेट) के बीच खड़ा कर दिया है। भारतीय समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव को तीन रूपों में देखा व समझा जा सकता है-

1. वैश्वीकरण (Globalisation) इसे समाज के कुलीन वर्गों के बीच उनके रहन-सहन और संस्कृति के बीच देख और समझ सकते हैं। वैश्वीकरण से अगर किसी को फायदा हुआ है, और हो रहा है तो वह व्यापारी वर्ग के करोड़पति समूह के लोगों को।

2. स्थानीयकरण (Localization) इसका सम्बन्ध समाज के उस तबके के लोगों से है। जिनको बहुत मेहनत के बाद शाम को रोटी नसीब होती है। उनके बीच बहुत ही सहज तरीके से यह 'ग्लोबल-विलेज' के नाम पर उनके समाज के लोगों को सुविधाएँ मुहैया करा रहा है। जिसे स्थानीयता के विकास की संज्ञा दी जाती है। लेकिन इसका मतलब विकास के नाम पर लूटना है।

3. संकरणीयकरण- (Hybridisation) 'लोकल और ग्लोबल' दोनों का मिला रूप जो पूरी तरह से मध्यवर्ग के लोगों के बीच फल-फूल रहा है। जिससे वह उत्तर-आधुनिक बनने की कल्पना में अपनी ही भाषा, संस्कृति और अन्य घटनाओं एवं वस्तुओं को संकरणीयकृत किए जा रहे हैं। हमारा समाज और संस्कृति पूरी तरह बहु-सांस्कृतिक होती जा रही है, जहाँ पर सारी चीजें अपने-अपने स्तर पर संकरण की शिकार हो रही हैं।

इतना ही नहीं वैश्वीकरण निजी-अस्तित्व और पहचान को भी धूमिल कर रहा है। समाज की पुरानी पीढ़ी को आज भी अपनी पहचान और संस्कृति की ज्यादा परवाह है। वहीं दूसरी तरफ आज की नई पीढ़ी अपने नए समाज और संस्कृति को ही स्वीकार कर रही है। उनके लिए समाज की बनी-बनाई मान्यताओं, सामाजिक रीति-रिवाज आदि से आकर्षण खत्म होता जा रहा है। उन्हें वैश्वीकृत समाज की आभासी दुनिया ही पसन्द आ रही है। वैश्वीकरण के पहले का समाज और

समाज के लोग प्रकृति को वरीयता देते थे और उसके अस्तित्व से ही अपना अस्तित्व समझते थे। वर्तमान दुनिया तरंगों और टैक्नोलोजी की दुनिया बन चुकी है। जहाँ आभासी दुनिया, मीडिया, संचार, और टैक्नोलोजी पर ही उनका अस्तित्व कायम है, इसके बिना वर्तमान दुनिया की कल्पना सम्भव नहीं है।

वैश्वीकरण का यह तीव्र दौर इसी तरह जारी रहा तो समाज और संस्कृति का यहाँ तक की प्रकृति का भी कोई यथार्थ बच नहीं पाएगा! क्योंकि यथार्थ दुनिया भयावह होती जा रही है, और समाज के लोग आभासी वास्तविकता (Virtual Reality & likes & Artificial Environment) को ही यथार्थ मानकर उसी दुनिया में खुश हैय उन्हें कल की कोई परवाह नहीं है और न ही वास्तविक दुनिया का भान वह करना ही चाहते हैं। वर्तमान समाज टैक्नोलोजी और मीडिया संचार की कैद में होते हुए भी वे अपने आपको सभी तरह से स्वतन्त्र महसूस कर रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि वह पहले की अपेक्षा आज ज्यादा कैद हुए हैं। और साथ ही साथ टैक्नोलोजी, संचार मीडिया के गुलाम भी। सूचना और तकनीक वैश्वीकरण के मुख्य वाहक के रूप में काम कर रहे हैं, जिसके माध्यम से विश्व की दूरी (एक स्थान से दूसरे स्थान की) काफी कम हुई है, लेकिन आपसी सम्बन्धों में एक-दूसरे के काफी करीब होते हुए भी दूरियाँ काफी बढ़ी हैं।

गौरतलब है कि आदिवासी समाज और संस्कृति 'जल जंगल और जमीन' से जुड़ी हुई है। दूसरे शब्दों में कहें, तो पयार्वरणीय इन तत्वों (जल, जंगल, जमीन) के बिना इनकी कल्पना नहीं की जा सकती है, और न ही इन तत्वों के बिना आदिवासी समाज, संस्कृति और आदिवासियों के अस्तित्व व अस्मिता को बचाया जा सकता है। आदिवासी संस्कृति को बचाना पूरे पर्यावरणीय संस्कृति व उसके अस्तित्व को बचाना है, जो आज पूरी दुनिया के सामने सबसे बड़ा चुनौती का विषय बना हुआ है।

21वीं सदी के इस दौर में विकास के नाम पर पूरी तरह से आदिवासी समाज और उनकी संस्कृति को वैश्वीकृत (Globlalized) किया जा रहा है। विकास के नाम पर इन्हें ही अपने घरों से बेघर किया जा रहा है। जिसे शान से देशवासियों के विकास और उन्हें मुख्य धारा में लाने का अथक प्रयास कहा जा रहा है, जबकि विकास की इस व्यवस्था को उजाड़वादी संस्कृति का नाम देना कुछ गलत न होगा। इतना ही नहीं आदिवासी समाज की अमूल्य निधि खनिज-सम्पदा के साथ-साथ सभी मानवीय व सामाजिक रिश्तों का भी दोहन किया जा रहा है। जिसे भूमण्डलीकरण की भाषा में विकास की संज्ञा दी जा रही है।

ऐसे समाज में आदिवासियों का ही नहीं, किसी भी समाज के अस्तित्व व अस्मिता की कोई पहचान नहीं बचायी जा सकेगी। वैश्वीकरण के इस आईने में पूरी दुनिया 'वैश्वीकृत दुनिया' में तब्दील होती जा रही है। यह कहना सही है कि- बदलते समय के साथ किसी भी देश या समाज

का विकास होना चाहिए, जो जरूर भी है, लेकिन विकास के नाम पर मानवीय मूल्यों का ह्रास, संवेदनशून्यता और केवल स्वार्थी दृष्टि से लाभ ही लाभ को वरीयता देकर सृष्टि का विकास करना कभी सम्भव नहीं है! क्योंकि एकतरफा विकास यानी मानवता का उलन्घन कभी भी विकास की श्रेणी में नहीं आ सकता है। मानवीय सम्वेदना से इतर समाज का विकास, समाज को केवल वर्गीकृत कर सकता है, एकीकृत व उसका विकास नहीं।

किसी भी समाज व सृष्टि का विकास मानव और प्रकृति के आपसी सहयोग से सम्भव है, न कि प्रकृति के अथक दोहन से। उपन्यास- 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' में विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन की समस्या से जूझते आदिवासियों की समस्या को उजागर किया गया है। साथ ही साथ उपन्यास में आदिवासी समाज की समस्याओं के माध्यम से पर्यावरणीय संकट से जूझते पूरे विश्व झाँकी प्रस्तुत हुई है।

समाज शब्द पर गौर करें तो 'समाज' शब्द 'सभ्य मानव जगत' की परिकल्पना का एक रूप कहा जा सकता है और इस पैमाने पर आदिवासी समाज खरा उतरता है! क्योंकि इस समाज में किसी भी प्रकार की अमानवीय गतिविधियाँ न के बराबर देखने को मिलती है। आदिवासी समाज की अपनी भाषा, संस्कृति और अपना एक अलग सामाजिक ढ़ाचा रहा है। जिसमें सभी लोग स्वतन्त्र महसूस करते रहे हैं। जिसे सच्चे अर्थों में सभ्य मानव जगत अर्थात 'समाज' की संज्ञा दी जा सकती है। लेकिन वर्तमान मानव मस्तिष्क की पैशाचिक उपज पूरी तरह से प्रकृति पर अपना अधिकार जमाना चाहती है। जिसकी वजह से मानव 'प्रकृति' के बारे में न सोचते हुए बस केवल अपने विकास के लिए प्रकृति का दोहन किए जा रहा है। इस प्रकार वह 'प्रकृति', जो सृष्टि के विकास के लिए 'नीलकंठ रूपी जहर' को धारण करके हमारी रक्षा में सहायक थी, वही कहीं न कहीं विनाश के उग्र रूप को धारण करने पर मजबूर हो रही है। वैश्वीकरण की इस चकमक में आदिवासी समाज कहीं न कहीं इस व्यवस्था का शिकार हुआ है, और हो रहा है। विकास के नाम पर इन्हीं की दुनिया में इन्हीं के अस्तित्व और अस्मिता को धूमिल करता हुआ वैश्वीकरण अपना बाजारवादी साम्राज्य फैला रहा है। जिसके आईने में अब आदिवासी समाज के सहज व यथार्थ प्रतिबिम्ब को देख पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। प्राचीनकाल से गौर किया जाए तो आदिवासी समाज की संस्कृति और प्रकृति उनके जीवनयापन का आर्थिक आधार रहा है। उनके अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवनयापन के नियम-कानून रहें हैं, जिससे वह पर्यावरणीय तत्वों के आधार पर स्वयं को जुड़ा महसूस करते रहे हैं। आज भूमण्डलीकरण के नाम पर 'दिकू' लोग कहीं न कहीं विकास के नाम पर और आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने के प्रयास में उन्हें उनकी निजी पहचान से अलग कर रहे हैं। महुआ माझी का उपन्यास- मरंग गोडा नीलकंठ हुआ में विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन की समस्या से जूझते आदिवासियों की समस्या को उजागर किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं।

आदिवासी इलाके की अमूल्य निधि खनिज-सम्पदा के साथ-साथ सभी मानवीय व सामाजिक रिश्तों का भी दोहन किया जाता है। जिसे वैश्वीकरण की भाषा में विकास की संज्ञा दी जाती है। 21 सदी के इस दौर में समाज के अस्तित्व व अस्मिता को बचाना सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। यह कहना सही है कि- बदलते समय के साथ किसी भी देश या समाज का विकास होना चाहिए, जो जरूर भी है, लेकिन विकास के नाम पर मानवीय मूल्यों का ह्रास, सम्वेदनशून्यता और केवल स्वार्थी दृष्टि से लाभ को वरीयता देकर सृष्टि का विकास करना कभी सम्भव नहीं है! क्योंकि एकतरफा विकास यानी मानवता का उलन्घन कभी भी विकास की श्रेणी में नहीं आ सकता है। मानवीय सम्वेदना से इतर समाज का विकास, समाज को केवल वर्गीकृत कर सकता है, एकीकृत व उसका विकास नहीं। इस प्रकार आदिवासी समाज की समस्याओं के माध्यम से पर्यावरणीय संकट से जूझते पूरे विश्व झाँकी प्रस्तुत हुई है।

आज आदिवासियों के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न बना हुआ है कि- क्या उन्हें मुख्यधारा में उनकी पहचान व अस्तित्व के साथ शामिल नहीं किया जा सकता है? विकास के नाम पर आदिवासी समाज और संस्कृति का लोप होता जा रहा है। आज आदिवासी लोग अपनी संस्कृति से अलग हो, विस्थापन जैसे जीवन-स्थिति के शिकार हो, असहाय जिन्दगी जीने को मजबूर हो रहे हैं। इस बाजारवादी संस्कृति ने आदिवासी अस्तित्व व उनकी पहचान के सामने संकट खड़ा कर दिया है। वैसे किसी के भी समाज और संस्कृति का लोप, उसे अस्तित्वहीन बना देता है। आज आदिवासी समाज उसी संकट के दौर से गुजर रहा है। 'दौड़' (2000) ममता कालिया का वैश्वीकरण के दौर का अद्‌भुत उपन्यास है। जिसमें वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण ने 21वीं सदी में युवाओं के सामने उनके सपनों की एक अलग और नितान्त नई दुनिया का द्वार खोल दिया है। बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान कराने के साथ-साथ बाजारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। जिसके माध्यम से यह बताने की कोशिश की गई है कि युवाओं ने बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों और रोजगार के नए अवसरों के तंत्र पर सवार होकर सफलता तो खूब अर्जित की है,पर समाज के बीच से मानवीय-सम्बन्ध और आपसी रिश्तों का कहीं न कहीं ह्रास हुआ है और होता जा रहा है। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'काशी का अस्सी' वैश्वीकरण की झांकी प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास के माध्यम से वैश्वीकरण की आंच को महसूस किया जा सकता है। दूसरा उपन्यास रेहन पर रग्घू- उदारीकरण की मार को गाँव में हो रहे परिवर्तन के माध्यम से मानवीय मूल्यों का ह्रास और आपसी सम्बन्धों में आई सम्वेदनहीनता की झाँकी को देखा व समझा जा सकता है।

संजीव का उपन्यास 'रह गई दिशाएँ इसी पार' में अन्य रचनाकारों की तरह दिशाहीन गति की ओर उन्मुख औद्योगिक सभ्यता के संकटों को रेखांकित नहीं करते बल्कि व्यक्ति के भीतर बैठी

उपभोक्तावादी मानसिकता से उत्पन्न खतरों की तरफ इशारा करते हैं, जिसे उन्मुक्त बाजारी संस्कृति की देन कहा जा सकता है। निर्वासन- इस उपन्यास में अखिलेश ने केवल किसी व्यक्ति के अपने परिवार अथवा समाज से निर्वासित होकर जीने की अनुभूतियों का ही चित्रण नहीं किया है। भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता के कारण इस तरह का भौतिक निर्वासन तो होता रहता है। जिसमें व्यक्ति अपने मूल स्थानों से विस्थापित होकर विभिन्न कारणों से नए-नए स्थानों पर रहने के लिए मजबूर हो जाता है। अपरचित लोगों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। उनके साथ अपनी नई पहचान बनाता है। नई भाषाएँ सीखता है और अपने को एक अलग संस्कृति में ढालने की कोशिश करता है। इस उपन्यास में दूसरी तरह के भी निर्वासन का चित्रण किया गया है, जो जीवन में प्रायः अपने भीतर खुद के साथ ही अथवा अपने आस-पास की चीजों के साथ घटित होता रहता है, और इसका हमें आभास भी नहीं होता कि पुरानी चीजें कैसे धीरे-धीरे जीवन से निर्वासित होती चली जाती हैं? और नई चीजें कैसे उनका स्थान लेती रहती हैं। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि वैश्वीकरण के इस दौर में समाज पर बाजारवाद हावी होता जा रहा है। समाज और संस्कृति बाजारीकरण के इस दौर में बाजारू संस्कृति का रूप ले चुका है। इसका प्रचार-प्रसार सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से जारी है, जिसके माध्यम से वैश्वीकृत समाज आभासी दुनिया का निर्माण करता हुआ, समाज से मानवीय-मूल्यों का दिन-प्रतिदिन ह्रास कर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन नष्ट हो रहा है। आपसी रिश्तों व आपसी सम्बन्धों की परिभाषा भी काफी हद तक बदल गई है। वर्तमान जीवन-शैली उपभोक्तावादी संस्कृति पर आधारित हो पैसों से खरीदी गई वस्तु सी हो गई है, जिसके प्रति कुछ समय तक लोभ वश मोह तो होता है पर किसी प्रकार की कोई सम्वेदना नहीं रही।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2001), 2. सिंह, काशीनाथ. काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2006), 3. सिंह, काशीनाथ. रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2008), 4. अखिलेश, निर्वासन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्ध2014ऋ, 5. कालिया, ममता. दौड़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्ध2000ऋ, 6. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्ध2012ऋ, 7. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली द्ध2012ऋ, 8. सिन्हा, सच्चिदानंद. भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, 9. सिंह, प्रभाकर. उपन्यासरू मूल्यांकन के नये आयाम,प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, वाराणसी-2014, 10. सिंह, अमित कुमार. भूमण्डलीकरण और भारत-परिख्रश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009, 11. शर्मा,श्री राम.द्धसं.ऋ समकालीन हिन्दी साहित्यरूविविधा विमर्श,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, 12. भारती, कँवल. दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, 13. पंडित, सुरेश. भूमण्डलीकरण के दौर में समाज और संस्ख्रति, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली-110032, 14. गुप्ता, रमणिका. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन,दिल्ली, सं.2002

हरि जोशीके, शोधार्थियों, पीएच.डी., पता : छत्रसाल नगर, फेज–2,
जे.के. रोड, भोपाल–462022 (म.प्र)
मो. : 09826426232, ई–मेल : harijoshi2001@yahoo.com

अमेरिका में हास्य व्यंग्य : समकालीन परिदृश्य

हरि जोशी

स्पष्ट है यहाँ हास्य अधिक मुखर है, व्यंग्य नहीं। इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह, कि यहाँ का भ्रष्टाचार आम आदमी को प्रभावित नहीं करता इसलिए व्यंग्य का विषय वह हो नहीं सकता। पुलिस तंत्र में भी रिश्वत खोरी नहीं है। बलात्कार की. गेंग रेप की लोकप्रियता हिंदुस्तान में सबसे अधिक है, अमेरिका में उसे कोई पूछता नहीं। मिलावट खोरी यहाँ संभव नहीं है।

स्वर्ग जा चुके मार्क ट्वेन, जार्ज ओरवेल के साथ अमेरिका के आधुनिक सक्रिय हास्यकारों यथा बेन स्टीन, स्टीफन कोल्बर्टफे एन्नास, मनु जोसेफ, आर्ट बुकवाल्ड, जिमि फेलन आदि अनेक हैं जिन्हें स्टैंडिंग कॉमेडी में सुना जा सकता है।

वहां का हास्य हमारे हास्य से भिन्न है। वहां उन्हें दिन प्रति दिन की समस्याओं से नहीं जूझना पड़ता? इसलिए वे घूम फिर कर गाली गलौच और सेक्स पर आ जाते हैं। श्रोताओं को उसी बात पर हंसाते हैं। वहां के युवा वर्ग की कवितायें सुन लीजिये, सेक्स से भरी हुई होंगी। जितनी कहानियां और उपन्यास वहां लिखे जाते हैं उनमें तीन चौथाई सेक्स पर आधारित हैं। जिमी फेलन ने तो डोनल्ड ट्रम्प को अपने सामने बैठाकर उनकी शक्लसूरत और वैसी ही मुद्रा बनाकर, उपस्थित श्रोताओं को खूब हंसाया है। एक प्रश्न तो जिमी फेलन, ट्रम्प की शक्ल बनाकर पूछता है ''तो आपकी मेक्सिकन्स की घुसपैठ रोकने के लिए क्या योजना है?'' तो डोनाल्ड ट्रम्प उत्तर देते 'जैसे चीन ने लम्बी दीवार बनायी है वैसी मैं भी बनवा दूंगा। ''और खूब जोर का ठहाका लगता। क्योंकि अमेरिका की खुली सीमा की लम्बाई चीन की दीवार से कई गुना अधिक है। किन्तु डोनल्ड ट्रम्प कभी गुस्से में पाँव पटककर स्टूडियो से बाहर नहीं गये। अनेक लॉस

एंजेलिस की पिछली दो यात्राओं में डोनल्ड ट्रम्प की छवि भारत के लालू यादव से अलग नहीं देखी। अनेक कॉमेडियनों ने ट्रम्प को अपना मुख्य पात्र बनाया था। इस बार तो खैर वह राष्ट्रपति ही बन गए ?

अमेरिका के हास्य व्यंग्य पर जब चिंतन करता हूँ, तो भारत के हास्य व्यंग्य से तुलना करते हुए थोड़ा भ्रम में पड़ जाता हूँ। दोनों ही प्रजातांत्रिक देश हैं। दोनों आतंकवाद में विश्वास नहीं करते। फिर यहाँ पर व्यंग्य के वे विषय क्यों नहीं होते जो हिंदुस्तान में होते हैं? उस दिन बार्नस एंड नोबल के, सिर्फ स्टोर्स नहीं, एक विशाल पुस्तकालय में हास्य व्यंग्य की कुछ पुस्तकें खरीदने गया था। सोचा अब लॉस एंजेलिस से भारत चलना है, अमेरिका की कुछ प्रतिनिधि किताबें ले चलूँ। आश्चर्य हुआ कि वहां मुझे कवल हास्य का शेल्फ मिला, व्यंग्य का था ही नहीं। फेयर फैक्स पुस्तकालय से भी जितनी किताबें लेकर पढ़ीं अधिकांश का स्वर हास्य से भरपूर किन्तु व्यंग्य की दृष्टि से लगभग नगण्य था।

स्पष्ट है यहाँ हास्य अधिक मुखर है, व्यंग्य नहीं। इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह, कि यहाँ का भ्रष्टाचार आम आदमी को प्रभावित नहीं करता इसलिए व्यंग्य का विषय वह हो नहीं सकता। पुलिस तंत्र में भी रिश्वत खोरी नहीं है। बलात्कार की. गैंग रेप की लोकप्रियता हिंदुस्तान में सबसे अधिक है, अमेरिका में उसे कोई पूछता नहीं। मिलावट खोरी यहाँ संभव नहीं है। काले मोटे या बदसूरत लोगों पर हँसना अपराध माना जाता है इसलिए यहाँ कोई इन विषयों पर लिखता बोलता नहीं। कुत्ते क्योंकि बहुतायत में पाले जाते हैं इसलिए एक दो उपन्यास कुछ हास्यव्यंग्य कुत्तों की पीड़ा से सम्बंधित उपलब्ध हैं। भारतीयों के बीच जो हाथापायी चाकू छुरी की घटनाएँ होती है, वे यहाँ नहीं होतीं। यहाँ मानसिक रूप से खिसका हुआ आदमी सीधे, गोली ही मारता है। एकाकीपन और उपेक्षा के कारण यह एक बीमारी काफी हद तक फैली हुई है। उस दिन राष्ट्रपति पद की उम्मीदवार हिलेरी क्लिंटन ने अपने वक्तव्य में कहा यहाँ ऐसी अंधाधुंध गोली बारी से 90 लोग प्रतिदिन मरते हैं। मेरा मतलब यह है कि यहाँ व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, भारतीय व्यंग्य से एकदम अलग है। इसलिए विषय भी वे नहीं हैं जो भारत में हैं। यहाँ सीधे सीधे राष्ट्रपति पर व्यंग्य किया जा सकता है, कभी कभी तो एक ही मंच पर राष्ट्रपति के सामने, व्यंग्यकार उस पर फब्तियां कसता है। अपने ऊपर किया गया प्रहार वह धैर्य से सुनता है। यहाँ कोई भी ऐसी घटना आज तक नहीं हुई जिसमें व्यंग्य लेखक या कार्टूनिस्ट प्रताड़ित किया गया हो ?

लेखक कहीं भी होगा तो वह पढ़ेगा लिखेगा या चिंतन करेगा। किन्तु उसका लेखन हमेशा परिवेश से प्रभावित होगा। अमेरिका का लेखक ऐसे मौलिक विचार देगा जो भारत का लेखक नहीं दे सकता, इसी प्रकार भारत का लेखक भी ऐसी मौलिक बात लिखेगा जो अमेरिका का लेखक सोच नहीं सकता। सामाजिक गठन, परम्परायें, आर्थिक स्थितियां, आदि बहुत से बिंदु हैं जो लेखन कराते हैं। फिर भी कुछ विचार सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो सकते हैं।

राजनीतिज्ञों पर एक अमरीकी व्यंग्यकार कहता है राजनीतिज्ञ डायपर के सामान होते हैं जिन्हें बार बार और उन्ही कारणों से बदला जाना चाहिए। यह एक सार्वदेशिक सार्वकालिक विचार है।

यहाँ जुइश लोग बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं द्यउनके धर्मस्थल याने सिनेगॉग तो लॉस एंजेलिस में यत्र तत्र फैले हुए हैं। उनकी पारिवारिक व्यवस्था भारतीयों सरीखी है। वे व्यापारी और

धनी लोग होते हैं। रविवार को काले सूट, टाई काला हेट पहने बड़ी संख्या में जुइश लोग धर्मस्थल पर जाते हुए मिलेंगे। फिर भी उस समाज के व्यंग्यकारों में अपने ही धर्म पर तीखे कटाक्ष करने की विशेषताध उदारता है। ऐसा कम होता है। रब्बाइयों पर सैकड़ों हास्य कथाएं हैं।

जुइश लेखक जुइश धर्म पर ही तीखे कटाक्ष करते हैं। अमेरिका में वाहन बहुत तेज गति से चलते हैं। एक जुइश व्यंग्य लेखक ने लिखा ''एक ड्राईवर और एक रब्बाई (जुइश धर्म के धर्म गुरु), एक ही दिन स्वर्गवासी हुए। यमदूत ने धर्म गुरु को नरक भेज दिया और ड्राईवर को स्वर्ग। स्वर्ग में निवास कर रहे लोगों को यह न्याय पसंद नहीं आया। उनमें से एक ने प्रश्न पूछ लिया। ऐसा क्यों किया गया ?''

उसे उत्तर दिया गया कि वह धर्म गुरु एक तो सबका प्रणाम लेता है जबकि उसकी सभा में कुछ ऊंघते रहते और अधिकांश श्रोता सोते रहते हैं, भगवान में बहुत कम ध्यान लगाकर सुनते हैं, जबकि इस ड्राईवर के सीट पर बैठते ही, सारे यात्री भगवान का जाप पूरी श्रद्धा और भक्ति से करते हैं। प्रार्थना करते रहते हैं ''हमारी जान तू ही बचा सकता है?'' इसी निष्ठा वान तपस्या के स्रोत को ध्यान में रखकर यह न्याय किया गया है। पुराने लेखकों में, मार्क ट्वेन, जॉर्ज ओरवेल सरीखे अन्य लेखकों ने तो गंभीर व्यंग्य लेखन किया किन्तु आजकल हास्य का प्रचलन ही अधिक है। स्टैंड अप कॉमेडी करने वालों की लाइन लगी हुई है, जिनमें प्रमुख हैं, मार्लो टोमस, स्टीफन कोल्बेर्ट, बिल मेहर, जिमी फैलन, स्टीव ऐलन, जॉर्ज कोर्लेन आदि। एक कारण यह भी है कि इसमें पैसा अच्छा मिलता है, दूसरा यह कि श्रोताओं को पढ़ने के बजाय सुनना और देखना अधिक रुचिकर लगता है। इन दिनों डोनाल्ड ट्रम्प सभी स्टैंड अप कॉमेडियन्स के चहेते विषय हैं। जो व्यक्तित्व भारत में लालू यादव का है, वही व्यक्तित्व अमेरिका में डोनाल्ड ट्रम्प का है। 2016 में यहाँ के राष्ट्रपति पद का जो चुनाव होने वाला है, रिपब्लिकन पार्टी के कुछ उम्मीदवारों में डोनाल्ड ट्रम्प भी एक हैं। वह बहुत बड़े व्यापारी हैं। कोई भी कॉमेडियन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनका इंटरव्यू लेता ही है, और इसके लिए वह भी तत्पर रहते हैं। वे जिस प्रकार का मुंह बनाकर बोलते हैं, वैसी ही शक्ल बनाकर जिमी फेलन बोलते हैं और उनके ही सामने बोलते हैं। इस तरह अपनी मुद्रा से दर्शकों को खूब हंसाते हैं। भारत में जो स्थिति राजू श्रीवास्तव या कपिल शर्मा की है, वैसे यहाँ कई कॉमेडियन हैं। सभी कॉमेडियन उनसे एक प्रश्न अवश्य पूछते हैं– ''आप देश के घुसपैठियों के बारे में क्या मत रखते हैं?'' (यहाँ मेक्सिको से अनाधिकृत रूप से बहुत बड़ी संख्या में गरीब लोग, रोजी रोटी के लिए आते हैं) और वोट पाने के लिए जिस तरह ममता बेनर्जी या उनके सरीखे नेता, बंगला देशी घुसपैठियों को आने देने की वकालत करते हैं, ठीक वैसी ही वकालत वोट पाने के लिए यहां के नेता भी करते हैं। कुछ राजनीतिज्ञ यह सोचते हैं कम रोजनदारी देकर, भरपूर काम करने को और कौन मिलेंगे? इसलिये सस्ते मजदूरों को भीतर आने दो। यह भी कि उनके समर्थन में वक्तव्य देने से उनके वोट भी मिल जायेंगे। डोनाल्ड ट्रम्प का उत्तर होता है।'' चीन ने भी तो इतनी लम्बी दीवार बनायी है, हम दो परत वाली उतनी ही बड़ी दीवार क्यों नही बना सकते? ''मैं यदि राष्ट्रपति बना तो दीवाल बना कर ही रहूँगा। एक दो गेट बीच में दे दूंगा, ताकि प्रवेश पत्र पाने के बाद ही अधिकृत घुसपैठिये यहाँ आ सकें ?''

जबकि तथ्य यह है कि बहुत बड़ी सीमा रेखा है उस पर इतनी लम्बी दीवार कौन और

कैसे बनाएगा? यह विचार बिलकुल व्यावहारिक नहीं है इसीलिये श्रोता हँसते हैं।

यहाँ केवल एक परिचय लगता है और किसी भी बड़े पुस्कालय के सदस्य आप मुफ्त में बन सकते हैं। यहाँ की पुस्तक संस्कृति के सामने भारत बहुत पीछे है। कौन सा विषय है जिसपर आप पुस्तक नहीं प्राप्त कर सकते? बच्चों के लिए डीवीडी, खिलौने, सीडी, फिल्म, बड़ों के लिए लैपटॉप सब मुफ्त में। फिर यहाँ के कर्मचारियों की तत्परता बहुत प्रभावित करती है। वे दौड़ दौड़ कर खुशी खुशी आपके काम की पुस्तकें निकलकर आपको देते हैं। लॉस एंजेलिस के फेयर फैक्स पुस्तकालय में 20 दिन के लिए एक साथ आप 30 पुस्तकें पढ़ने के लिए ले जा सकते हैं। ऑगस्टिन, मिशिगन, में भी मैंने वही देखा। एक वृद्ध महिला तो दस बारह किताबें ले जाती थी और एक सप्ताह में पढ़कर वापिस कर देती थी। यहाँ जुइश लोग बड़ी संख्या में रहते हैं। हास्य लिखनेवालों में आर्ट बुक्वाल्ड, माइकल इयान ब्लैक, समेंथा बी, बेन स्टीन, माइकल मूर, एंड्रू ए रूनी आदि अनेक लेखक हैं। या तो आप रायटर सर्किल मे हों तो आप उनसे मिल अकते हैं अन्यथा एजेंट के माध्यम से ही किसी लेखक से संपर्क किया जा सकता है। किताबें बिकती भी खूब हैं लेखकों को पैसा भी खूब मिलता है। केवल कविता की पुस्तकें नहीं बिकती। यहाँ की एक खास बीमारी है, क्योंकि लेखकों के पास व्यंग्य के विषय कम हैं, और समाज भी खुला माना जाता है इसलिए, गुप्तांगों पर, सेक्स पर, प्रेमालाप पर लगभग प्रत्येक कॉमेडियन हँसाता है। वे वेजिना, पेनिस और टेस्टिकल्स से ही अनेक तुलनाएं करते रहते हैं। भारत में तो राजनीतिज्ञों को धन्यवाद दें कि उनके बयान, उनके कार्यकलाप, उनका भाई भतीजावाद, तथा पुलिस का भ्रष्टाचार, पग पग पर होती रिश्वत खोरी, धार्मिक उन्माद, शिक्षा व्यवस्था, ये सब विषय व्यंग्यकारों के लिए लिखने के लिए होते हैं। वहां वामपंथी लेखक नहीं हैं, यदि हैं भी तो मुखर नहीं। यह मेरी छहमाही छठवी यात्रा थी। जब 2006 में मैं छः महीने के लिए ऑगस्टिन में था, तब अन्य पुस्तकों में एक बेन स्टीन की पुस्तक ''हाउ टू रुइन युवर लव लाइफ'' भी पढ़ी थी। मुझे तब वह किताब बहुत अच्छी लगी थी। पिछले दिनों मैंने यहाँ अनेक किताबें पढ़ीं। ''पीसेज ऑफ माय माइण्ड, 2. यु आर डूइंग इट राइट, 3. आई नो व्हाट आई एम, बट व्हाट आर यू , 4. हियर कम्स ट्रबल। मैंने एक बड़ा ग्रन्थ भी पढ़ा ''ए ट्रेजरी ऑफ जूइश हूमर'', लगभग दो हजार पृष्ठ का ग्रन्थ।

यहाँ की अंग्रेजी भी, लन्दन की अंग्रेजी से थोड़ी अलग है। कई जगह स्पेलिंग अलग, उच्चारण तो बिलकुल अलग। हम लोग ''पास'' होना कहते हैं, ये ''पेस'' होना कहते हैं। ये शिड्यूल को स्केड्यूल बोलेंगे। आदि आदि। मेरी इंग्लिश में दो किताबें हैं जिनमें एक तो अमेरिका से ही प्रकाशित है, इसलिए मैं लेखकों में घुसपैठ कर लेता हूँ। उनमें नए लोगों के लिए स्वीकार्यता है, इस बात की तो प्रशंसा करनी पड़ेगी। इसीलिये उनकी गोष्ठियों में भाग लेता रहता हूँ। यहाँ लेखकीय स्वतंत्रता बहुत है, पर व्यंग्य के लिये विषय कम हैं। पिछले दिनों जॉर्ज कोर्लेन का पोलीटिकली करेक्टनेस पर बहुत अच्छा व्यंग्य यू टड्यूब पर सुना था किन्तु ऐसे विषय कम उठाये गए हैं। हाँ, इस मामले में हमारी भारत भूमि बहुत उर्वर है।

प्रांजल धर

देश की सभी प्रतिष्ठित पत्रपत्रिकाओं में कविताएँ, समीक्षाएँ, यात्रा वृत्तान्त और आलेख प्रकाशित। आकाशवाणी से कुछ कविताएँ प्रसारित। 'नया ज्ञानोदय', 'नेशनल दुनिया', 'जनसंदेश टाइम्स' और 'द सी एक्सप्रेस' समेत अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में एक दशक से नियमित स्तम्भकार।

जी–22, एन.पी.एल. कॉलोनी, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली–110060

मो. : 09990665881, ई–मेल : pranjaldhar@gmail.com

बापू की कल्पना

गाँधी की कल्पना उतरती, साँसों में,
अन्तराल नापती
हृदय की दो धड़कनों के बीच का,
दूरी
दो सच कही बातों की,
वजन
दो ईमानदार क्षणों का
जो इसी जनम के हों।
सिद्धान्त
जो बने अनुभवों की आवाज पर
परखती उन्हें बापू की कल्पना।
हिसाब करती
घड़ियों का
जो गुजरीं वक्त की पाबन्द बनकर
जिया जिनमें जीवन
सात्विक प्रखरता के तेज से तनकर।
देती दिलासा
उन बच्चों को
जो अँग्रेजी में फेल हैं
... 'दुनिया से कह दो,
गाँधी अँग्रेजी नहीं जानता!'
कहती, 'मेहनत करो, तब खाओ'
हालाँकि खा-पीकर भी
मेहनत करने वाले कहाँ मिलते आज !
सरल बातों की सरलता लेकर
रेंगती यह कल्पना
पलकों के किनारे-किनारे
और मानना पड़ता
कि निहायत सरल होना कितना
कठिन है !
अन्त में कहती – 'किताबों में मत खोजो मुझे!'

प्रो. राजेश्वर आनदेव, सेवा निवृत्त प्राचार्य, शासकीय आटोनामस स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र), मो. : 9425845646
ई–मेल : anadeo1943@gmail.com

हिन्दी अपने गुणों के कारण बढ़ रही है।

प्रो. राजेश्वर आनदेव

वास्तव में टी.वी. ने हिन्दी के लिये क्रांति लाई है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिय टी.वी. सशक्त माध्यम बनकर सामने आया है। सब महसूस करते हैं कि अंग्रेजी समाचार चेनलों का धीरे-धीरे हिन्दी चेनलों ने स्थान ले लिया और वे लोकप्रिय भी हो गये हैं। विज्ञापन भी, जो पहले अंग्रेजी में आते थे, हिन्दी में आने लगे और हिन्दी का बाजारीकरण होने से व्यवसाय को बढ़ावा देने लगे।

अब इन बातों के पर्याप्त सबूत मिलते जा रहे हैं कि हिन्दी भाषा इतनी सरल और गुणों वाली भाषा है कि वह अपने आप देश में एवं विदेशों में लोकप्रिय हो रही है। हालांकि इस बात से इन्कार भी नही किया जा सकता है कि हिन्दी को अंग्रेजी भाषा एवं अन्य सीनीय भाषाओं से लगातार संघर्ष करना पड़ा है। सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत से कई परिवर्तनों के बाद आज की हिन्दी को स्थाई पड़ाव प्राप्त हो गया है। यह भी सिद्ध हो गया है कि यह एक वैज्ञानिक भाषा है। सुनना, पढ़ना, लिखना और बोलना सभी में समानता के कारण यह सबकी चहेती बनती चली आ रही है।

मुझे अपने भूटान यात्रा की एक घटना ने बहुत प्रभावित किया था। हम पाँच वरिष्ठ नागरिक भूटान भ्रमण के दौरान एक त्रिवेणी संगम के पास स्थित मठ देखकर लौट रहे थे। संगम के पास एक बगीचा था जहाँ स्कूल के बच्चे खेल रहे थे। यहाँ तक तो सब सामान्य सी बात थी किंतु अचानक उन बच्चों की बोलचाल में कुछ हिन्दी शब्द कानों में पड़े। एक शिक्षाविद् होने के कारण उत्सुकतावश मैं उन बच्चों के पास पहुँच गया। थोड़ा और ध्यान से सुनने पर मैंने महसूस किया कि अधिकांश बच्चे हिन्दी में बाते कर रहें थे। मैंने उन बच्चों से निकटता बढ़ाई और प्रश्न किया कि क्या उनकी शाला में हिन्दी पढ़ाई जाती है? तब

उन्होंने ना में उत्तर दिया। बातों को आगे बढ़ाते हुये उन्हें जब पूछा कि उन्हें हिन्दी किसने सिखाई तब उन्होंने कहा कि भूटान, इण्डिया के पास होने के कारण, टी.वी. पर हम हिन्दी चेनल बचपन से देखते आ रहे हैं उसे सुनकर और देखकर हम हिन्दी सीख गये हैं। उन्होंने आगे बताया कि छोटे बच्चे पोगो, डिस्कवरी-चेनल, कार्टुन चेनल देखकर थोड़ी बहुत हिन्दी सीख जाते हैं। बड़े होने के बाद टी.वी. पर हिन्दी फिल्में देखकर सभी हिन्दी सीख जाते हैं। फिल्मी अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के कुछ नाम भी उन्होंने बतायें। आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होंने कुछ फिल्मी गाने भी गाकर सुनायें। केवल टी.वी. देखकर हिन्दी सीखने में रूचि रखना और बोलना यह हिन्दी की सरलता का अनुपम उदाहरण था।

वास्तव में टी.वी. ने हिन्दी के लिये क्रांति लाई है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिय टी.वी. सशक्त माध्यम बनकर सामने आया है। सब महसूस करते हैं

मैंने यह भी देखा कि विदेशों में भी भारत से गये लोग हिन्दी से मोह रखते हैं। दुबई प्रवास के दौरान मैं एक परिचित के घर गया था। वहाँ मैंने देखा कि उसके बच्चे आपस में हिन्दी में बात कर रहे थे। इसी बीच बच्ची की एक सहेली वहाँ आई। दोनों अंग्रेजी में बात करने लगी। उसके जाने के बाद भाई-बहन, माता-पिता पुनः हिन्दी में ही बातें करने लगे। मैंने आश्चर्य व्यक्त किया तो उन्होंने मुझे बताया कि हमने स्पष्ट रूप से बच्चों को बताया है कि घर में हिन्दी में ही बात करें जिससे भारत में जाने पर उनके दादा-दादी को यह लगे कि उनके पोता-पोती आये हैं। कोई अंग्रेज के बच्चें नहीं आये। भारत में भी कई ऐसे ही परिवार है जिनके बच्चे कान्वेन्ट में पढ़ते हैं मगर उन्हें घर में हिन्दी में ही बातचीत करनी होती है। ऐसे ही परिवारों ने हिन्दी को जीवित रखते हुये प्रचार-प्रसार किया है।

कि अंग्रेजी समाचार चेनलों का धीरे-धीरे हिन्दी चेनलों ने स्थान ले लिया और वे लोकप्रिय भी हो गये हैं। विज्ञापन भी, जो पहले अंग्रेजी में आते थे, हिन्दी में आने लगे और हिन्दी का बाजारीकरण होने से व्यवसाय को बढ़ावा देने लगे। गौर करें सिमेंट के एक विज्ञापन में एक अंग्रेज हिन्दी में कहता है ''सस्ता नहीं सबसे अच्छा''। हिन्दी की लोकप्रियता की यह बड़ी सफलता है। उसे मालूम है कि हिन्दी के माध्यम से वह गाँवों से भी जुड़ रहा है। ''दक्षिण एशिया फ्रेटरनिटी'' के सेमीनार के लिये अगस्त में सोनमर्ग (श्रीनगर) जाना हुआ था। भारत, अफगानिस्तान, बंग्लादेश एवं नेपाल से प्रतिनिधि आये थे। सभी बड़े आराम से हिलमिल कर हिन्दी में आपस में बात कर हे थे। पांडिचेरी की एक प्रतिभागी जिसका नाम प्रेमा था ने, सांस्कृतिक कार्यक्रम के दौरान, अत्यंत सुंदर भारत नाट्यम प्रस्तुत किया था। उसे जब पता चला कि मैं हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु ''सृजन गाथा'' संस्था के साथ कई बार विदेश जा चुका हूँ तथा विदेशों में भी सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं तो वह उत्सुकतावश मेरे पास आई एवं हमारे अाियान के बारे में पूछने लगी। वह अंग्रेजी में

जानकारी लेना चाह रही थी। जब मैंने उसे बताया कि जो लोग हिन्दी का विश्व भाषा बनाने के लिये प्रयासरत होते हैं उन्हें ही हम साथ ले जाते हैं तथा उनहीं में से अच्छे कलाकार सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी भाग लेते हैं। उसने मुझे शुद्ध हिन्दी में कहा ''मैं हिन्दी जानती हूँ और बोलती भी हूँ'' हालांकि उसका बोलने का ढ़ंग तमिल था फिर भी उसने आश्चर्य चकित कर दिया था। उसने हिन्दी में बताया कि भारत के दक्षिण में आजकल विद्यार्थी हिन्दी सीखते हैं। वहाँ हिन्दी सिखाने की कक्षायें भी चालु हो गई है। उसे यदि अंतराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के कार्यक्रम में भारत नाट्य करने का सौभाग्य मिलता है तो वह भी अगले सम्मेलन जो कि 'इजिप्ट' में होने वाला है जाना चाहेगी और हिन्दी में कविता भी पढ़ेगी। उसका हिन्दी प्रेम देखकर मुझे अत्यंत आनंद की अनुभूति हुई थी।

एक बार 'सृजन गाथा' द्वारा उजबेकिस्तान में विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन में प्रतिभागी के रूप में जाने का मौका मिला था। वापसी पर हम लोगों को ताशकद हवाई अड्डे पर 4-5 युवतियों का एक समूह मिला था। हमारे कुछ साथियों ने उनसे पूछा कि वे भारत क्यों जा रही हैं? उन युवतियों ने जवाब दिया कि पर्यटन के लिये भारत से बहुत लोग आते गाईड के रूप में अथवा अन्य कार्यों से उनके साथ हिन्दी में वार्तालाप किया जा सके अत: वे हिन्दी सीखने नई दिल्ली जा रही है।

मैंने यह भी देखा कि विदेशों में भी भारत से गये लोग हिन्दी से मोह रखते हैं। दुबई प्रवास के दौरान मैं एक परिचित के घर गया था। वहाँ मैंने देखा कि उसके बच्चे आपस में हिन्दी में बात कर रहे थे। इसी बीच बच्ची की एक सहेली वहाँ आई। दोनों अंग्रेजी में बात करने लगी। उसके जाने के बाद भाई-बहन, माता-पिता पुन: हिन्दी में ही बातें करने लगे। मैंने आश्चर्य व्यक्त किया तो उन्होंने मुझे बताया कि हमने स्पष्ट रूप से बच्चों को बताया है कि घर में हिन्दी में ही बात करें जिससे भारत में जाने पर उनके दादा-दादी को यह लगे कि उनके पोता-पोती आये हैं। कोई अंग्रेज के बच्चें नहीं आये। भारत में भी कई ऐसे ही परिवार है जिनके बच्चे कान्वेन्ट में पढ़ते हैं मगर उन्हें घर में हिन्दी में ही बातचीत करनी होती है। ऐसे ही परिवारों ने हिन्दी को जीवित रखते हुये प्रचार-प्रसार किया है। कुछ बच्चों से मैंने पूछा कि उन्हें अंग्रेजी ओर हिन्दी में बोलने और सीखने में क्या अंतर महसूस होता है तब उन्होंने जवाब दिया था। अंग्रेजी सीखनी पड़ी है, समझना होता है और रटनी भी पड़ती है किंतु हिन्दी माता, पिता, भाई एवं बहनों से बाते करते हुये अपने आप आ जाती है। ऐसी सरल गुणों वाली है हमारी हिन्दी। हमारे प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र भाई मोदी पूरे विश्व में हिन्दी में भाषण दे रहे हैं। आपको भी हमेशा हिन्दी भाषा में ही वार्तालाप करना चाहिये तभी राष्ट्रभाषा की सही सेवा होगी।

प्रयास करें हस्ताक्षर हिन्दी में करें, घर के सामने नाम पट्टलिका हिन्दी में लगावें, दुकानों के नाम हिन्दी में लिखें और आपस में हिन्दी में बातें करें क्योंकि ''हिन्दी भारत माता के माथे की बिंदी है। सभी प्रयास करें तो यह विश्व भाषा के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र संघ में भी मान्यता प्राप्त कर सकती है।

डॉ. मीनाक्षी जोशी, एम.ए. (हिन्दी), एम, फिल, पीएच–डी (हिन्दी), बी.एड। अध्यक्ष–हिन्दी विभाग (सेवानिवृत–2016), जे.एम.पटेल कॉलेज, भंडारा। "मधुरा", रामायण नगरी, खात रोड, भंडारा – 441 904 (महाराष्ट्र), मो. : 9823215230, ई–मेल : minakshijoshi2511@gmail.com

मीडिया लेखन और हिन्दी

डॉ. मीनाक्षी जोशी

वास्तव में टी.वी. ने हिन्दी के लिये क्रांति लाई है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिय टी.वी. सशक्त माध्यम बनकर सामने आया है। सब महसूस करते हैं कि अंग्रेजी समाचार चेनलों का धीरे-धीरे हिन्दी चेनलों ने स्थान ले लिया और वे लोकप्रिय भी हो गये हैं। विज्ञापन भी, जो पहले अंग्रेजी में आते थे, हिन्दी में आने लगे और हिन्दी का बाजारीकरण होने से व्यवसाय को बढ़ावा देने लगे।

भाषा मानव व्यक्तित्व की पहचान है। मनुष्य अपने आस-पास के परिवेश और परिस्थितियों को देखता, भोगता और अनुभव करता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त यह प्रक्रिया निरंतर गतिमान रहती है। इन्हीं अनुभवों को अभिव्यक्ति देन के लिए वह भाषा का चुनाव करता है। मनुष्य को स्थापित करने वाली भाषा ही होती है। हर देश की अपनी एक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परम्परा होती है। यहाँ भाषा को व्यक्ति से जोड़कर देखा जाता है। अर्थात् व्यक्ति समाज और भाषा का घनिष्ठ सम्बंध है। जब हम किसी भाषा की बात करते हैं, तो हम उसे संरचनात्मक और प्रयोग मूलक इन दो पहलूओं से देखने का प्रयास करते हैं। भाषा की प्रकृति संरचनात्मक पहलू है और प्रयोजन के अनुसार उसका प्रयोग प्रकार्यात्मक पहलू है। भाषा केवल भोजपत्रों, पन्नों और शिलालेखों पर ही अंकित होती हो, ऐसी बात नहीं है, बल्कि अपने व्यापक रूप में इसके अनेक माध्यम हुआ करते हैं। इन्हीं माध्यमों में एक माध्यम मीडिया है भाषा के बिना मीडिया की कल्पना नहीं की जा सकती।

मीडिया का सामान्य अर्थ होता है - संचार माध्यम। 'संचार' संस्कृत के 'चर' धातु से निसृत है। 'चर' का अभिप्राय है- 'चलना'।

गंभीर अर्थों में निरंतर आगे बढ़ती रहने वाली प्रक्रिया 'संचरण' कहाती है। वर्तमान में वह 'कम्यूनिकेशन' शब्द का पर्याय है जिसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के 'कम्यूनिस' से हुई है जिसका अर्थ है - 'टू मेक कॉमन', 'टू इम्पोर्ट,' टू शेयर, टू ट्रांसमिट अर्थात् सूचनाओं के आदान-प्रदान से समान भागीदारी निर्मित करना संचार का उद्देश्य है। दूसरे शब्दों में ''सूचना, विचारों और अभिव्यक्तियों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सम्प्रेषित करने की कला का नाम 'संचार' है।''

ए.एस. वरट्रेण्ड के अनुसार- ''संचार वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सूचना और सांस्कृतिक तत्व सम्प्रेषित किए जाते हैं।''

संचार का सर्वाधिक विकास कागज और मुद्रण कला के आविष्कार के साथ हुआ। कागज का आविष्कार सन् 105 ई. में चीन में हुआ। जापान में सन 660 ई. में सांचों के माध्यम से छपाई की कला के बीज पड़े। संचार की विकास यात्रा में तीव्रता इलेक्ट्रॉनिक जन संचार माध्यमों-रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई.मेल, सेल्युर आदि के आविष्कार और उपयोग से आई। आधुनिक संचार व्यवस्था ने समय और दूरी की सीमा को समाप्त प्राय कर दिया है। विकसित संचार माध्यमों के कारण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना फलीभूत होने लगी है।

मीडिया अपने को सुदृढ़ बनाने के लिए एक ओर तो हिन्दी की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं, वहीं इन माध्यमों ने हिन्दी को व्यापकता भी प्रदान की हैं यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी को लोकप्रिय और सहज ग्राह्य बनाने में रेडियो, टी.वी., समाचार पत्र एवं फिल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु यह भी सत्य है कि हिन्दी को 'इंग्लिश' बनाने में भी इन्हीं साधनों का हाथ है।

आज निसंदेह संचार माध्यम पर्यावरण, व्यवस्था, समाज की प्रगति, सभ्यता, संस्कृति एवं व्यवसाय आदि क्षेत्रों के विकास का एक सशक्त साधन बन गया है। प्रश्न यह उठता है कि मीडिया के बढ़ते प्रचलन में आज भाषा और विशेषकर हिन्दी की क्या स्थिति है? मीडिया में आज जिस भाषा का प्रयोग हो रहा है उसे 'हिंग्लिश' का नमा दिया गया हे, जिसमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार की भाषा का बढ़ता प्रचलन भले ही युवा वर्ग की कठिनाइयों को दूर कर रहा हो किंतु हमारी राष्ट्रभाषा का संकट गहरा रहा है। प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनो में भाषा का संकट स्पष्ट रूप से देखा और महसूस किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, आकाश से खूबसूरत खतेरे की तरह भाषायी आक्रमण के तेवर लेकर आया है। स्टार सहित अन्य अंतर्राष्ट्रीय केवल कार्यक्रम आ रहे हैं। प्रारंभ में इन चैनलों में लगभग सभी कार्यक्रम अंग्रेजी में आए परन्तु इनके संचालकों ने पाया कि यदि जन-जन तक पहुँचना है तो हिन्दी को अपनाना होगा। धीरे-धीरे तमाम धारावाहिक विज्ञापन और समाचार हिन्दी में आने लगे। कनाडा एयरलाइंस ने पहले ही अपनी उड़ान-पत्रिका में हिन्दी-खंड का समावेश कर लिया है। रीडर्स डायजेस्ट का हिन्दी संस्करण 'सर्वोत्तम' भी इसका उदाहरण है। जाहिर है, दुनिया

की तीसरी महत्वपूर्ण भाषा हिन्दी (अब दूसरे स्थान पर) को अनेदखा कर कोई भी प्रचार-प्रसार माध्यम अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकती। हिन्दी अब साहित्य के दायरे से निकलकर व्यवहारमूलक क्षेत्रों में अपनी विजय पताका फहरा रही है।

मीडिया अपने को सुदृढ़ बनाने के लिए एक ओर तो हिन्दी की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं, वहीं इन माध्यमों ने हिन्दी को व्यापकता भी प्रदान की हैं यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी को लोकप्रिय और सहज ग्राह्य बनाने में रेडियो, टी.वी., समाचार पत्र एवं फिल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु यह भी सत्य है कि हिन्दी को 'इंग्लिश' बनाने में भी इन्हीं साधनों का हाथ है। क्योंकि अब ये माध्यम बाजारवाद से भी जुड़ गए हैं। इनका उद्देश्य व्यावसायिक लाभ प्राप्त करना भी है। विशेषकर विज्ञापनों ने हिन्दी के वर्तमान स्वरूप पर कई सवालिया निशान लगा दिए हैं। आज विज्ञान की भाषा एक शास्त्र के रूप में उभर रही है। शब्द बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। शब्द संयोजन एक सृजनात्मकता के साथ-साथ विश्वसनीयता की भी मांग करता है। मीडिया ने हिन्दी में उन शब्दों को स्थान दिया है जिसमें हमारी समाज की आस्थाएँ, श्रद्धा, मनोवृत्तियाँ, आचार व्यवहार समाहित हैं। हिन्दी भाषा के आलोचक भी यह स्वीकार करते हैं कि इस देश में मीडिया की सफलता एवं लोकप्रियता में हिन्दी का विशेष योगदान है। आज मीडिया में प्रयुक्त होने वाली भाषा विशिष्ट मुहावरों मं ढ़कर जन7जीवन का प्रतिबिम्ब बन गई है। प्रौढ़-शिक्षा, परिवार-नियोजन, सुरक्षा, प्रचार आदि के कार्य में हिन्दी का प्रयोग इसका जीवन्त उदाहरण है। भाषा की अति शुद्धता और विशिष्ट रूप का आग्रह-दुराग्रह रखनेवाले भी इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि व्याकरण भाषा का अनुगामी होता है। इसलिए जिस रूप में हिन्दी अभी विकसित हो रही है वह जन-भाषा के रूप में है। लिखित रूप में आते-आते वह अपना परिष्कार करती हुई आगे बढ़ती रहेगी। रेडियो, टी.वी. फिल्मों में प्रादेशिक उच्चारणों, लहज़ों और शैलियों में ढ़ली हिन्दी एक दिन अपने अपेक्षित रूप को प्राप्त कर लेगी। आखिर अंग्रेजी को भी इन सारे संकटों से गुजरना पड़ा था।

आज मनुष्य का महत्व कम और धन का महत्व अधिक हो गया है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में हिन्दी की अस्मिता बनाए रखने में मीडिया का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। मीडिया लोक-चेतना का सच्चा संवाहक है, अतः राष्ट्रभाषा के प्रति उसे अपने नैतिक कर्तव्य पहचानने होंगे। व्यवसायिक लाभ के लिए वह अपने समाचारों एवं अन्य कार्यक्रमों में भाषा को धारदार हथियार के रूप में प्रयोजन कर रही है। जिसका दुष्प्रभाव बच्चों के कोमल मन तथा युवापीढ़ी की सोच पर तेजी से पड़ रहा है। जहाँ एक ओर मीडिया को स्वतंत्रता चाहिए वहीं दूसरी ओर भाषा को भी किसी के कब्ज में नहीं रहना चाहिए। आज की विषय परिस्थितियों में हिन्दी का सांस्कृतिक गौरव नष्ट न हो इस हेतु मीडिया को कुछ पक्षों पर अवश्य विचार करना होगा। उसे हिन्दी भाषा-ज्ञान से सम्बंधित कार्यक्रमों को निरंतर प्रस्तुत करना चाहिए। मीडिया के ऐसे सृजनशील साहित्यकोरों को प्रोत्साहन देना चाहिए जो हिन्दी में लेखन-कार्य (रचनाएँ) करते हैं। जब मीडिया हिन्दी को केन्द्र में रखकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेगा तब वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी मीडिया और समाज में रहने वाले व्यक्ति के बीच शुद्ध साधना बन जाएगी।

76, दिन अपार्टमेंट्स, सेक्टर–4, द्वारका, नई दिल्ली – 110078
मोबाईल – 09998269237

मातृभाषा के नए प्रश्न

परिचय दास

मातृभाषा में जनता के संघर्ष बोलते हैं। कोई व्यक्ति जो मातृभाषा की महत्ता जानता है, उसे पता है कि आंदोलन, लोकछवि, आत्म–अविष्कार और बदलाव के लिए इससे बेहतर कोई माध्यम नहीं। क्योंकि उसका वास्ता उन भाषाओं से पड़ेगा जो वहां की जनता बोलती है और जिनकी सेवा के लिए उसने कलम उठाई है।

मातृभाषा अपने मां–पिता से प्राप्त भाषा है। उसमें जड़े हैं, स्मृतियां हैं व बिंब भी। मातृभाषा एक भिन्न कोटि का सांस्कृतिक आचरण देती है जो किसी अन्य भाषा के साथ शायद संभव नहीं। मातृभाषा के साथ कुछ ऐसे तत्व जुड़े होते हैं जिनके कारण उसकी संप्रेषणीयता उस भाषा के बोलने वाले के लिए अधिक मार्मिक होती है। यह प्रश्न इतिहास और संस्कृति के वाहन से भी संबद्ध है, जो संप्रेषण की प्रक्रिया के दौरान निर्मित होती है।

संस्कृति का कार्य विश्व को महज बिंबों में व्यक्त करना नहीं, बल्कि उन बिंबों के जरिए संसार को नूतन दृष्टि से देखने का ढंग भी विकसित करना है। औपनिवेशिकता के दबावों ने ऐसी भाषा में दुनिया देखने के लिए विवश किया गया था जो दूसरों की भाषा रही है। उसमें हमारे सच्चे सपने नहीं आ सकते थे। साम्राज्यवाद सबसे पहले सांस्कृतिक धरातल पर आक्रमण करता है। वह भाषा को अवमूल्यित करने लगता है। हमारी ही भाषा को हीनतर बताता है। लोग अपनी मातृभाषा से कतराने लगते हैं और विश्व की दबंग भाषाओं की प्रभुत्वपरिकता को महिमा मंडित करने लगते हैं। उसी से

अभिव्यक्ति करने लगते हैं या बंध जाते हैं और मातृभाषा अंततरू छोड़ने लगते हैं। गर्व से कहते हैं कि मेरे बच्चे को मातृभाषा नहीं आती।

मातृभाषा में अपनी कहावतें, लोककथाएं, कहानियां, पहेलियां, सूक्तियां होती हैं, जो सीधे हमारी स्मृति की धरती से जुड़ी होती हैं। उसमें किसान की शक्ति होती है। उसमें एक भिन्न बनावट होती है। एक विशिष्ट सामाजिक और मनोवज्ञानिक बनावट, जिसमें अस्मिता का रचाव होता है। जब भी किसी महादेश की पीड़ा का बयान होगा तो कोई भी जेनुइन लेखक अपनी मातृभाषा में जितनी तीव्रता और तीक्ष्णता के साथ अपनी बात कह पाएगा, अन्य भाषा में नहीं। आत्म–अन्वेषण की जो गहराई मातृभाषा के साथ संबंध है, अन्य भाषा के साथ नहीं। अन्य भाषा में बात कही जा सकती है, लेकिन वह मार्मिकता संभव नहीं, यह भाषा वैज्ञानिक व सांस्कृतिक तथ्य है।

मातृभाषा से अपने परिवेश व पर्यावरण का बोध होता है। संबद्धीकरण की प्रक्रिया में मजबूती होती है। अलगाव से बचाव होता है। मातृभाषा से वह मौखिक लय प्रकट होती है, जिसमें प्रकृति और परिवेश के साथ सामाजिक संघर्ष भी प्रकट होता है। उससे साहित्य और संस्कृति के सकारात्मक, मानवीय जनतांत्रिक तत्व भी सामने आते हैं। अपनी संस्कृति की जड़ों में जाकर हमें आत्मविश्वास की अनुभूति होती है। उधार ली हुई भाषा संपूर्णतरू हमारे साहित्य एवं कलाओं का विकास नहीं कर सकते, क्योंकि उनका कंसर्न हमसे रागात्मक रूप से जुड़ा नहीं है। उधार की भाषा का सत्ता केंद्र कहीं और होता है और वह मातृभाषा जैसी आकांक्षा की पूर्ति का वाहक नहीं हो सकता। मातृभाषा में धरती की जो गंध है और कल्पनाशीलता का जो पारंपरिक सिलसिला है जो अन्य भाषा में संभव नहीं। विशेष रूप से औपनिवेशिकता के साथ थोपी हुई भाषा में तो कतई नहीं।

मातृभाषा में जनता के संघर्ष बोलते हैं। कोई व्यक्ति जो मातृभाषा की महत्ता जानता है, उसे पता है कि आंदोलन, लोकछवि, आत्म–अविष्कार और बदलाव के लिए इससे बेहतर कोई माध्यम नहीं। क्योंकि उसका वास्ता उन भाषाओं से पड़ेगा जो वहां की जनता बोलती है और जिनकी सेवा के लिए उसने कलम उठाई है। वह वही गीत गाएगा जो जनता चाहती है। मातृभाषा के माध्यम से अर्थ सीधा–सीधा सरोकार से है। इससे उस माध्यम के सामाजिक व राजनैतिक निहितार्थो का बोध होता है।

मातृभाषा के माध्यम से भाषाई अस्मिता के माध्यम से लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं को गीतों, नृत्यों, नाटकों, कविताओं आदि के जरिए अभिव्यक्ति दी जा सकती है तथा नई चेतना की आकांक्षा को स्वर दिया जा सकता है। श्रमिक वर्ग व जनसामान्य को मूलतरू उनकी मातृभाषा में अच्छी तरह संबोधित व संप्रेषित किया जा सकता है। मातृभाषा में संरचनात्मक रूपांतर की प्रक्रिया में शिक्षा–संस्कृति की एक निर्णायक भूमिका होती है जो साम्राज्यवाद के नए औपनिवेशिक चरण में विजय के लिए जरूरी है। शिक्षा और संस्कृति में आवश्यक संबंध है और सामाजिक–राजनैतिक–आर्थिक पक्षों से सीधा सरोकार है, इसीलिए

वहां मातृभाषा की प्रभावी भूमिका है।

सच यह है कि संस्कृति अपने आप में इतिहास की अभिव्यक्ति व उत्पाद भी है, जिसका निर्माण प्रकृति और अन्य लोगों के साथ संबंधों पर आश्रित है, इसीलिए वहां मातृभाषा का अंतरंग प्रवेश है। यदि मातृभाषा को आधार बनाया गया तो सामुदायिकता में आबद्ध गण अपनी भाषा, साहित्य, धर्म, थिएटर, कला, स्थापत्य, नृत्य और एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करते हैं जो इतिहास और भूगोल को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पहुंचा पाते हैं। शिक्षा और संस्कृति वर्गीय विभेदों को समाज की आर्थिक बुनियाद में व्यक्त करती है। वास्तव में वर्गीय समाजों में दो तरह की शिक्षा के बीच संघर्ष चलता रहता है। जो दो परस्पर संस्कृतियों का प्रसार करती और दो परस्पर विरोधी चेतना या विश्व दृष्टि या विचारधाराओं का वाहक हैं। निश्चित रूप से औपनिवेशिकता से ग्रस्त सांस्कृतिक पक्षों के लिए मातृभाषा की आवश्यकता है ही नहीं। वे अपने लिए वैसी ही भाषा चुनेंगे, जो उनके क्लास को प्रतिनिधित्व दे। इसी देश में कई जगह बच्चे मातृभाषा बोलते हुए दंड पाते हैं तो इसको समझना चाहिए।

मूल है वह सौंदर्य बोध, जो हमारी लोक कथाओं, हमारे सपनों, विज्ञान, हमारे भविष्य की कामना में छिपा है। उसका सौंदर्य हमारी धरती की गंध से उपजा होता है। अन्य भाषाओं को अपनाने, उनमें अभिव्यक्ति करने में कोई बुराई नहीं। न ही उनमें ज्ञान–विज्ञान–सामाजिक विज्ञान सीखने व अर्जित करने में कोई संकोच। मूल यह है कि जो ताकतें मातृभाषा को रचनात्मकता से हीन करने व उसे हीनतर करने को सक्रिय रही हैं, उन्हें पहचानने व उनके क्रूर से सावधान रहने की आवश्यकता है। हमारी अस्मिता, साहित्य, सृजनात्मकता का सर्वोच्च वभव मातृभाषा में ही संभव है। वह असीम है। कल्पना का वह छोर है। वह हमारी धरती का रंग है। उसमें हमारे देशज मूल्य हैं। वह हमारे लिए भविष्यकामी है। मातृभाषा में परंपरा की जीवंतता है। वह किसी और देश की अन्य धारा की मुखापेक्षी नहीं। वह हमारे गोमुख से आती है। उसमें हमारी धूप व हमारी छांव है। हमारी धमनी व शिराएं उससे रोमांचित होती हें। वह हमारी वर्षो से स्थापित सभ्यता की केंद्रीयता रखती है। वह हमारा गहन आकर्षण प्रीति व मुक्ति है। उसमें हमारे लिए गहन आवेग भी है। वह हमारी परंपरा में हमें परिष्कृत करती चलती है। वह हमें जो मिठास देती है, अन्यथा रूप से दूसरी भाषा नहीं दे सकती। मातृभाषा जीवंत अभिव्यक्ति का शायद सबसे सुंदर मध्यम है। मातृभाषा न केवल सहज शिल्प है अपितु सबसे अर्थपूर्ण संभावना है। मातृभाषा में कट्टरता न होना और जनपक्षधर होना उसका समंजन पक्ष है। उसमें मनुष्य की स्मृतियां–बिंब अधिक सुरक्षित व पल्लवित हैं। उसमें जितने पारंपरिक अर्थगर्भ होते हैं, उतनी ही वज्ञानिकता व मनुष्यता की मुक्तिकामी संभावनाएं भी।

डॉ. शिखा कौशिक 'नूतन'
'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान,उत्तर प्रदेश द्वारा लघु कथा संग्रह ''क्योंकि औरत कट्टर नहीं होती'' के लिए ''पंडित बद्री प्रसाद शिन्गलु स्मृति पुरुस्कार'' (20 15) से सम्मानित।

हिन्दी समाचार–पत्र व हिंग्लिश

डॉ. शिखा कौशिक 'नूतन'

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारतीय राजनीति पर महात्मा गाँधी का प्रभाव पड़ने लगा था .इस दौरान काशी से श्आजश दैनिक का प्रकाशन महती उपलब्धि था। महात्मा गाँधी ने पूरे राष्ट्र को एकसूत्र में बांधने के लिए हिंदी को अनिवार्य माना और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय–संविधान के भाग १७ , अध्याय १, धरा ३४३ (१) में हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा घोषित किया गया।

व्यक्ति को परिवार से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाने वाला तथा उसको विचारों के माध्यम से मन–मस्तिष्क की अंतर्गुहा से निकाल कर समाज तक लाने वाला अजेय माध्यम यह भाषा ही है। भारतीय सन्दर्भ में जब भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है तब यह तथ्य निर्विवाद रूप से उजागर होता है कि जिस आर्य भाषा परिवार(भारोपीय) से हमारी भाषाओँ का इतिहास जुड़ा है वह विश्व के भाषा परिवारों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है . श्श जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ,इसका क्षेत्र भारतीय उपमहाद्वीप है .इस शाखा के विकास का इतिहास लगभग ३५०० वर्षों का है।

भारतीय आर्य भाषाओँ के विकास का अंतिम चरण श्आधुनिक भारतीय आर्य भाषाकाल श के नाम से जाना जाता है . इसका उद्भव १००० ई. के लगभग माना जाता है .श्खूजा हिंदी साहित्य सीरीज ,पृष्ठ–१८६ ,

खड़ी बोली को ये स्थान प्रदान करने में हिंदी साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा .अपने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जनता को जागृत करने के साथ–साथ खड़ी बोली को विकसित करने

का भी स्तुत्य प्रयास हिंदी साहित्यकारों ने किया .हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत हुई .श्श भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र ने अपनी आयु के १७ वे वर्ष अर्थात १८६७ में कविवचन सुधा , १८७३ में हरिश्चंद्र मैगजीन , १८७४ में हरिश्चंद्र चंद्ररिका .....उनकी पहल से हिंदी भाषा ही सम्पुष्ट नहीं हुई , वरन स्वतंत्रता संग्राम की मजबूत पृष्ठ –भूमि तैयार हुई .यह काल ऐसा था जब अंग्रेजी शासन के खिलाफ बोलना व् लिखना मना था .....इतना ही नहीं भारतेन्दु जी ने लेखकों का एक समूह तैयार कर लोगों में देश के प्रति चेतना जगाने व् हिंदी भाषा के उत्थान का कार्य किया .भारतेन्दु की प्रेरणा से प्रयाग से पंडित बालकृष्ण भट्ट ने सितम्बर १८७७ में श्हिंदी प्रदीप श का प्रकाशन किया .....हिंदी प्रदीप ने जो लेखकों को राह दिखाई , वह भारत के इतिहास में अमरता कायम कर गई.. .....१६ वी सदी के अंत तक राष्ट्रीय चेतना मुखर होने लगी थी .ऐसे समय में पूर्वी उत्तर प्रदेश से निकलने वाले पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई .१६०३ के अंक में श्सरस्वती श ने स्वदेशी की भावना को पुष्ट करते हुए लिखा –

श्श अपना बोया आप ही खावे , अपना कपडा आप बनावे !!श्श

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारतीय राजनीति पर महात्मा गाँधी का प्रभाव पड़ने लगा था .इस दौरान काशी से श्आजश दैनिक का प्रकाशन महती उपलब्धि था। महात्मा गाँधी ने पूरे राष्ट्र को एकसूत्र में बांधने के लिए हिंदी को अनिवार्य माना और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय–संविधान के भाग १७ , अध्याय १, धरा ३४३ (१) में हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा घोषित किया गया .बहुसंख्यक भारतीयों की संपर्क भाषा व् भारत की एकता–अखंडता को बनाये रखने वाली हिंदी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का सम्मान जन–जन द्वारा प्रदान किया गया .

हिंदी भाषा के विकास में इतनी महती भूमिका निभाने वाली हिंदी पत्रकारिता का वर्तमान में हिंदी के प्रति व्यवहार निराश करने वाला है. स्वतंत्रता–प्राप्ति के ७० वे वर्ष में प्रवेश कर चुके भारत में आज हिंदी भाषा को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है . जिन समाचार–पत्रों ने हिंदी को व्यवस्थित रूप प्रदान करने में पिछली शताब्दियों में महती भूमिका निभाई थी आज वे अपने पथ से भ्रष्ट होती प्रतीत होती हैं .आज का कोई भी हिंदी भाषा का समाचार पत्र उठाकर देखिए उसमे देवनागरी लिपि में अंग्रेजी के शब्दों की भरमार मिलेगी .आज इस नये भाषा–मिश्रण को हिंदीअंग्रेजी=हिंग्लिश की संज्ञा दी जा रही . यदि हम हिंग्लिश के इतिहास पर नजर डाले तो हमें निम्न जानकारी प्राप्त होती है –

हिंग्लिश, मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से, हिंग्लिश, शब्दों षहिन्दी तथा ष्इंग्लिशष् का मिश्रण है जिसका अर्थ है दोनों भाषाओं का एक वाक्य में इकट्ठे प्रयोग करना। इसका प्रयोग अधिकतर भारत के हिन्दी–भाषी राज्यों के शहरी तथा अर्ध–शहरी क्षेत्रों में देखी जाता है जो कि टेलीविजन, मोबाइल फोन तथा मौखिक सम्पर्क के जरिये धीरे–धीरे ग्रामीण तथा दूर–दराज के क्षेत्रों में भी फैल रही है तथा धीरे–धीरे वर्नाकुलर स्थिति को प्राप्त हो रही है।

कई बोलने वाले जानते ही नहीं कि वे हिन्दी वाक्यों में अंग्रेजी शब्द या अंग्रेजी

वाक्यों में हिन्दी शब्द घुसा रहे हैं। डेविड क्रिस्टल जो कि यूनिवर्सिटी ऑफ वेल्स में एक ब्रिटिश भाषा–विज्ञानी हैं, ने २००४ में परिकलन किया कि ३५० मिलियन पर, विश्व के हिंग्लिश बोलने वाले जल्दी ही मूल अंग्रेजी बोलने वालों से अधिक हो जायेंगे ।ख।,

स्तम्भकार देवयानी चौबल पहली लेखिका थीं जिन्होंने अपने लेखन में हिंग्लिश का प्रयोग किया। फिर लेखिका शोभा डे ने अपनी किताबों तथा भारतीय पत्रिका स्टारडस्ट के कॉलमों में हिंग्लिश तत्वों का प्रयोग करना शुरु किया। सलमान रुश्दी तथा उपमन्यु चटर्जी अन्य लेखक हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में हिंग्लिश का बहुतायत से प्रयोग किया है ।ख2,

२००५ में, बलजिन्दर कौर महल (पेन नाम बी० के० महल) ने कॉलिन्स द्वारा प्रकाशित द क्वीन्स हिंग्लिशरू हाउ टू स्पीक पुक्का नामक किताब लिखी।

हिंग्लिश इंग्लैण्ड में बोली जाने वाली अंग्रेजी को भी प्रभावित कर रही है। भारतीय अप्रवासियों तथा उनके ऑफ्सप्रिंग्स के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले शब्द तथा क्सप्रैशन इंग्लैण्ड की बोलचाल की अंग्रेजी में अपनाये गये हैं।

१३ मार्च २०१६ को टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित खबर में राजस्थान के शिक्षा मंत्री वासुदेव देवनानी ने सिंधु शोध पीठ महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय ,अजमेर , के कार्यक्रम में सच ही कहा था– हिंग्लिश जो आज चलन में है वो हिंदी भाषा को नष्ट कर रही है .ऐसी भाषा का प्रयोग हमारी अपनी भाषा की मौलिकता को आघात पहुंचाना पाठक–संख्या व् बिक्री के आधार पर हिंदी समाचार–पत्रों में देश में प्रथम स्थान रखने वाले महत्वपूर्ण समाचार–पत्रों में आज जिस प्रकार हिंग्लिश का प्रयोग किया जा रहा वो अत्यंत निंदनीय है . कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

समाचार–पत्रों के समाचारों के हिंग्लिश शीर्षक

' सी.बी.एस.ई. दसवीं का रिजल्ट घोषित 'अब एक क्लिक में कीजिये शादी का रजिस्ट्रेशन 'छेड़छाड़ वाले प्वाइंट होंगे चिन्हित 'लो गई ग्रेडिंग खत्म , अगली बार नजर आएंगें टॉपर्स 'विवाद की जगह खेल पर हो फोकस 'ई.वी.एम. चौलेन्ज आज ,नैनीताल हाई कोर्ट ने भी दी हरी झंडी 'रिटायर कर्नल के शिकारी बेटे ने किया सरेंडर 'प्रदेश में अब कम्युनिटी पुलिसिंग 'कर्नाटक की नंदिनी ने सिविल सेवा परीक्षा में किया टॉप 'ओवरलोडिंग रोकने में मददगार इलेक्ट्रानिक टोल प्रणाली 'अचीवर्स टेस्ट से पता लगेगीआज 'अयोध्या एजेंडे पर आगे बढ़ रही राज्य–सरकार 'समर कैम्प के मेधावी पुरस्कृत ,बच्चों ने तैयार किये मॉडल 'जल्द बैंक अकाउंट नंबर भी हो सकेगा पोर्ट 'मीनाक्षी बंसल बानी तीज क्वीन '....तो क्या सुप्रीम कोर्ट को बंद कर दें–चीफ जस्टिस ' ट्रकों पर लगेगी डिवाइस ,पकड़ी जाएगी टैक्स चोरी 'शहर में जहाँ चाहो वहां लगाओ होर्डिंग्स 'वॉच टॉवर तो तैयार पर पुलिस कर्मी नहीं 'पाकिस्तान को डिफेन्स फंडिंग पर अमेरिका की कड़ी शर्ते 'रूपा के रेप वाले ब्यान पर बवाल 'खस्ताहाल सड़कों पर सपा का वॉकआउट 'चाइल्ड पोनोग्राफी साइटें ब्लॉक ' आधार कार्ड बिना अनाज

नहीं ,राशन कार्डों की आज रैंडम जाँच ' फिक्स था २०११ वर्ल्ड कप रूरणतुंगा

उपर्युक्त शीर्षकों में हिंदी के साथ जहाँ जहाँ भी अंग्रेजी शब्दों को प्रयुक्त किया गया है ,वह अनावश्यक है .उस स्थान पर हिंदी शब्दों का प्रयोग कर हिंदी की मौलिकता को बनाये रखा जा सकता था यथा –

रिजल्ट – परिणाम रजिस्ट्रेशन –पंजीकरण फोकस– एकाग्रता हाई कोर्ट–उच्च न्यायलय चौलेंज –चुनौती टॉप–सर्वोच्च स्थान रिटायर –सेवानिवृत्त सरेंडर –समर्पण सुप्रीम कोर्ट–सर्वोच्च न्यायलय टैक्स –कर रेप–बलात्कार गैंगरेप–सामूहिक बलात्कार चीफ जस्टिस–मुख्य न्यायाधीश

उपरोक्त हिंदी शब्द तो अति प्रचलित हैं किन्तु समाचार पत्र अंग्रेजी के शब्दों को अधिक प्रमुखता देकर हिंदी भाषा में मिलावट का काम कर रहे हैं .बोलचाल की भाषा को शुद्ध करने में भी समाचार पत्र प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं पर वे स्वयं भ्रमित होकर जनता द्वारा प्रयोग की जा रही अशुद्ध व् अव्याकरणिक भाषा का प्रयोग कर रहे हैं .

संगणक (कंप्यूटर) से सम्बंधित सम्पूर्ण शब्दावली तो अंग्रेजी शब्दों के देवनागरीकरण के रूप में परोसी जा ही रही य साथ साथ बैंक , वैज्ञानिक अनुसंधानों , विधि सम्बन्धी , खेल सम्बन्धी शब्दावली व् शब्द संक्षेप भी अंग्रेजी से परिपूर्ण है . ऐसा लगता है कि जैसे हिंदी ने अंग्रेजी के सामने घुटने तक दिए हो . यथा –

फ.आई.आर. , होम गॉर्ड , रेल ट्रैक , वीडियो ,एस.एम.एस. , पैन नंबर , रिजल्ट , ई. रिक्शा ,जी.एस.टी , आई.आई.टी. , चार्जशीट , कंट्रोल रूम , मोबाइल , मेडिकल कैम्प , बाइक , सोशल मीडिया , एटीएम कार्ड , स्मार्ट सिटी , स्मार्ट फोन ,सेल्फी , क्लिक , वेबसाइट , सेंसेक्स , मेट्रो , ट्रेनिंग , वर्चुअल , हाइवे , सेमीफाइनल ,फाइनल मैच आदि .

उपर्युक्त शब्द धड़ाके के साथ हिंदी समाचार पत्र प्रयोग करते हैं और कहीं से भी ये चेष्टा दिखाई नहीं देती कि वो हिंदी में इनका अनुवाद कर हिंदी भाषा को समृद्ध करने का प्रयास करे .

निश्चित रूप से हिंदी समाचार पत्रों को हिंदी के प्रचार–प्रसार में अपनी भूमिका का पुनर्मूल्यांकन करना होगा .उन्हें समझना होगा कि समाचार पत्र हिंदी को समृद्ध बनाने में महती भूमिका निभा सकते हैं अन्यथा यही कहना होगा कि आज के हिंदी के समाचार पत्रों में तो अंग्रेजी समाचार पत्रों से भी अधिक अंग्रेजी का प्रयोग कर हिंदी की मौलिकता के साथ अक्षम्य अपराध किया जा रहा है .बोलचाल तक हिंग्लिश को अपनाया जा सकता है पर लेखन में भाषा के स्वरुप के साथ छेड़छाड़ कतई उचित नहीं है .

कल्पना पत्रिका का प्रकाशन अगस्त 1949 से प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका श्री बद्री विशाल पित्ती जी की संकल्पना का परिणाम थी। इसके प्रारम्भिक सम्पादक मंडल में डा. रघुवीर सिंह, प्रो. रंजन, मधुसूदन चतुर्वेदी और बद्री विशाल पित्ती जी थे। इसके प्रधान सम्पादक डा. आर्येन्द्र शर्मा थे। कल्पना पत्रिका ने हिंदी साहित्य और आलोचना के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। जो कार्य एक जमाने में सरस्वती पत्रिका ने किया था वही कार्य हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका कल्पना ने किया। पत्रिका का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि जो एक बार कल्पना में छप जाता था, वह लेखक के रूप में जाना जाने लगता था। हिंदी के स्वनामधन्य रचनाकारों यथा धर्मवीर भारती, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, कीर्ति चौधरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शमशेर बहादुर सिंह, रामदरश मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, दुष्यंत कुमार की रचनाएँ प्रकाशित कीं। इसके सम्पादक मंडल में भवानी प्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, प्रयाग शुक्ल जैसे रचनाकार शामिल रहे। इस रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाते हुए यह पत्रिका 1977 तक प्रकाशित होती रही। हिंदी की ऐतिहासिक पत्रिकाओं में कल्पना का नाम और इसकी भूमिका अविस्मरणीय है। प्रस्तुत है दासवेज में प्रकाशित धर्मवीर भारती का यह आलेख।

भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रूख : एक सर्वेक्षण

धर्मवीर भारती

सांस्कृतिक पतन और राजनीतिक अनाचार का पक्ष ले कर ये ब्यूह बांधकर हमारे सामने आकर खड़े हो गए हैं- शंख बजा कर घोषित करते हुए कि तुम्हारे सत्य को, तुम्हारी भाषा को, तुम्हारी स्वाधीन चेतना को हमने ब्यूह बांधकर कुचल दिया, बोलो अब?

किसी भी जाति, किसी भी राष्ट्र के इतिहास में पराजय का क्षण अक्सर मार्मिक वेदना और बहुत गहरी अकुलाहट का क्षण होता है। और यदि हम यह जाने हम सही उद्देश्य के लिए लड़ रहे थे, हमारे साधन दूषित नहीं थे, हमारे प्रतिपक्षी सत्य से विमुख, और आत्मबल से हीन थे, तब भी पराजय हमारी हुई है तो पराजय की यंत्रण दुगनी हो जाती है। और कहीं इसके साथ यह स्थिति भी जुड़ जाए कि जिन पर हमारा भरोसा था, जिसे हमने गहन विश्वास और आदर्श से अपने अभियान के समस्त सूत्र सौंप दिए थे, अपना प्रतिनिधि मानकर जिन्हें अपनी ओर से निर्णय लेने के अधिकार हमने दे रखे थे, उन्होंने बिना हमारी क्षमता जाँचे, बिना हमारे आत्मबल को परखे-हमारे प्रतिपक्षी से हाथ मिलाकर असत्य के प्रति समर्पण कर दिया-हमें सत्य की

ओर से लड़कर अपनी शक्ति आजमाने का मौका देने के पहले ही हमारी पराजय घोषित करा दी, तो अपमान की एक गहरी कड़वाहट इस यंत्रण को हजार गुना सीखा आवाज जाती है। इसलिए और भी हिंदी के प्रति यह विश्वासघात उनकी ओर से आया है जो हमारे अपने होने का दावा करते नहीं थकते थे।

इतिहास में ऐसे विश्वास हाथों की सूची बहुत लंबी है – बहकावे में आकर अपने पैगंबर को बेच देने वाले जुडास से लेकर सत्ता के लोभ में गज़नी को पुनः आमंत्रण देने वाले जयचंद तक। लेकिन हिंदी के प्रति संसद में किए गए विश्वासघात में मानो जुडास और जयचंद दोनों की पद्धतियां संयुक्त हो गई थीं। जुडास ने विश्वासघात का तरीका चुनाव था चुंबन! वह इसा के मस्तक पर आदर का चुंबन अंकित करेगा ताकि षडयंत्र कारी पहचान जाएं यही है वह जिसे सलीब पर चढ़ना है। जयचंद ने एक विदेशी योद्धा को बुलाया था ताकि वह अपने लिए और सत्ता बटोर सके। (यह बात दीगर है उसे अपनी सत्ता भी गंवानी पर गई थी।) हिंदी के प्रति जिन लोगों ने इस विश्वासघाती विधायक का आयोजन किया उन्होंने शुरुआत की जुडास की चुंबन पद्धति से। अभी शायद वे वाक्य लोगों को भूले नहीं होंगे जो विधेयक पेश होने के कुछ ही पहले हिंदी के एक बड़े आयोजन में कहे गए थे– मैं हिन्दी का ही पक्षधर हूँ। विश्वास कीजिए, मेरे हाथों हिंदी का अहित नहीं होने का।'' मद्रास से लेकर दिल्ली तक विधेयक बनाने वालों की दौड़ लग रही थी और हर जगह हिंदी के मस्तक पर आदरसूचक चुंबन अंकित किया जा रहा था लेकिन अंदर–अंदर तैयार हो रहा था वह विधेयक जिसके द्वारा विदेशी शासक की भाषा को फिर बुला कर हम पर अनिश्चितकाल तक लादने की जयचंदी योजना बन रही थी, ताकि हिंदी का बलिदान कर, एक टूटी हुई सत्ता को किसी तरह बटोर कर रखा जा सके। मुंह में हिन्दी– स्तुति बगल में अंग्रेजी लादो विधेयक का प्रारूप। पद्धति जुडास की इरादे जयचंद के!

चोट जब पराये हाथों से आती है तो आहत जाति क्रोध में भरकर तुरंत प्रतिरोध के लिए उठ खड़ी होती है। मगर जब चोट करने के लिए अपनों ही के हाथ उठे हों तब बड़े से बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठता है। ये द्रोण हैं जिन्होंने हमें शस्त्र उठाने की शिक्षा दी, ये भीष्म हैं जो नीति के ज्ञाता हैं, ये हमारे स्वजन हैं –हम इन्हीं के निर्देशित किए रास्ते पर बढते रहे। फिर आज क्या हो गया कि असत्य, फरेब, राष्टघात, मानसिक गुलामी सांस्कृतिक पतन और राजनीतिक अनाचार का पक्ष ले कर ये ब्यूह बांधकर हमारे सामने आकर खड़े हो गए हैं– शंख बजा कर घोषित करते हुए कि तुम्हारे सत्य को, तुम्हारी भाषा को, तुम्हारी स्वाधीन चेतना को हमने ब्यूह बांधकर कुचल दिया, बोलो अब?

बोलो अब? का यह सवाल न केवल हिंदी जगत वरण समस्त देश में भारतीय भाषाओं

के बोलने वालों और उन्हें प्यार करने वालों के समक्ष तानाशाही ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि सारे देश के जणतंत्रात्मक राष्ट्रप्रेमी तत्व सच-मुच किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए हैं।

2. प्रश्न यह है कि अब क्या किया जाए? हमारे सामने तीन विकल्प हैं- असहयोग संघर्ष, और सहयोग। असहयोग का अर्थ यह है कि शासन से अत्यंत विनयपूर्वक निवेदन किया जाए की राजभाषा का पद हिन्दी के लिए बड़ा महंगा पड़ रहा है, उसे अब इस गौरव-भार से मुक्त किया जाए। इस विकल्प का प्रथम दोष यह है कि ऐसे असहयोग से एक प्रकार का गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा। इसका पूरा लाभ अंग्रेजी को मिलेगा। हिंदी के स्थान पर तमिल या बांग्ला या कोई भी भारतीय भाषा सामने आती तब तो बात बन जाती किन्तु प्रतिस्पर्धा तो अंग्रेजी से है जो पहले से विद्यमान है- अत: हिंदी के खाते में जितना भी नफा होगा वह सब अंग्रेजी के खाते में जमा हो

वक्तव्य में कहा गया है कि सरकार ने दोष का परिमार्जन करने का निश्चय किया है। लेकिन हम यह जानना चाहते हैं कि सरकार ने अपना दोष स्वीकार कब? उसने कब यह कहा कि ''हिन्दी जब अपनी सहज गति से विकास कर रही थी, तब हमने या हमारे कई मिनिस्टरों और अफसरों ने 15 साल तक सिर्फ इस बात की तनख्वाहें लीं कि वे हिन्दी की प्रगति में रोड़ा अटकाते रहें?'' उलटे निर्लज्जतापूर्वक अपना दोष हिन्दी के विकास को बाधित कर कतिपय राजपुरूषों ने हिन्दी भाषियों को 'स्टुपिड' तक कहने का दुस्साहस किया। क्या यह दीप-स्वीकार की भाषा है? प्रजातंत्र में दोष-स्वीकार का अर्थ होता है, अपनी असमर्थता स्वीकार करना और इस्तीफा दे कर अलग हो जाना। क्या प्रधान मंत्री या गृहमंत्री या जो भी इस अकर्मण्यता का जिम्मेदार हो उसने इस्तीफा दिया?

जाएगा। संघर्ष का अर्थ गांधी का यह सत्याग्रही देश अच्छी तरह जानता है। किंतु इस माँग के खतरे और भी बड़े हैं एक तो आपात स्थिति अभी बनी हुई है इसीलिए यह समय शक्ति-समन्वय तथा शक्ति-संचय का है और अंत: संघर्ष में, चाहे वह कितना भी न्याय एवं शांतिमय क्यों न हो, राष्ट्र शक्ति का ह्रास अनिवार्य है। दूसरे, संघर्ष का रुप- आप चाहे लाख प्रयत्न करें- राजनीतिक हुए बिना रह नहीं सकता और हिंदी का प्रश्न दलगत राजनीति के दलदल में अगर एक बार भी फंस गया तो फिर उसका उत्तर नहीं हो सकता। हिंदी की राष्ट्रीय परंपराएं अत्यंत उज्जवल और निष्कलंक रही हैं। आक्रोश या प्रतिशोध की भावना के वशीभूत होकर हमें कोई कार्य ऐसा नहीं करना चाहिए जिससे उन पर धब्बा लगे। तीसरा विकल्प है सहयोग, जिसका अर्थ यह है कि

उत्तेजना और आक्रोश को त्याग विवेकपूर्ण रचनात्मक पद्धति का अवलंबन किया जाए – अर्थात अतीत की विफलताओं का विश्लेषण और उनके लिए उत्तरदाई व्यक्तियों अथवा अभिकरणों की छानबीन करने के स्थान पर वर्तमान तथा भावी विकास योजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया जाए। इसके लिए या विश्वास करना होगा कि शासन ''एकमात्र मंच'' ''सरकार के समर्थन और सहयोग'' के दो आधार बताये गये हैं सैद्धान्तिक आधार तो यह है कि हिन्दी की राष्ट्रीय परम्परा बड़ी उज्ज्वल और निष्कर्सक रही है। हिन्दी के प्रश्न को दलगत राजनीति के दलदल में नहीं फंसने देना चाहिए। संघर्ष किया तो राजनीतिक में फंसने की आशंका है और फिर उसे दलदल से इसका उजागर सम्भव नहीं।

इस सैद्धान्तिक आधार अलावा सहयोग का भावनात्मक आधार यह बताया गया है कि हमें विश्वास करना होगा कि शासन वास्तव में अगामी दस-बारह वर्षों में हिन्दी के लए सम्यक् उद्योग करना चाहता है। उसे विश्वास हो गया है कि हिन्दी के लिए पिछले वर्षों में उचित व्यवस्था नहीं हुई और अब सरकार अपनी भूल सुधारना चाहती है।

सैद्धान्तिक आधारों की बात तो बाद में होगी। पहले सवाल उठता है कि जिन भावनात्मक आधारों की ओर इस वक्तव्य में संकेत किया गया है उनका प्रमाण क्या है? हम यों और कैसे विश्वास कर लें कि जिस सरकार ने 15 वर्ष पहले विधान में हिन्दी की राजभाषा स्वीकार किया था और यह दायित्व लिया था कि वह उसे राजभाषा के योग्य बनने में पूरी सहायता देगी, उसने 15 वर्ष हिन्दी की प्रगति में अड़ेगा डालने में, अंग्रेजी कके हाथ मजबूत करने में और अन्त में विधाान तक की उपेक्षा कर अंग्रेजी को हमारे सिर पर लादने में जरा भी संकोच नहीं किया, क्या वही सरकार फिर हिन्दी के विकास का आश्वासन दे कर अगले 15 सालों में अपने पिछड़े अनुभवों से और पुष्ट हो कर हिन्दी का रहा-सहा उन्मूलन करने में प्रवृत्त न होगी? कौन-सी ऐसी नयी बात है जिससे हिन्दी के सम्बंध में सरकार के प्रति हममे नया विश्वास जाग उठे। हिन्दी के सम्बंध में दिये जाने वाले अश्वासन? पर क्या ये, बल्कि इससे भी ज्यादा बड़े आश्वासन आज से 15 साल पहले नहीं दिये गये थे? इतनी दूर जाने की क्या जरूरत? क्या अभी-अभी विधेयक प्रस्तुत करने के पहले ''हिन्दी का अहित मुझसे न होगा'' के आश्वासन नहीं दिये गये थे? क्या अभी-अभी विश्वास करने का मीझा फल हमने नहीं चखा है? फिर विश्वास तुम्ही पर? क्या? आखिर किस आधार पर?

वक्तव्य में कहा गया है कि सरकार ने दोष का परिमार्जन करने का निश्चय किया है। लेकिन हम यह जानना चाहते हैं कि सरकार ने अपना दोष स्वीकार कब? उसने कब यह कहा कि ''हिन्दी जब अपनी सहज गति से विकास कर रही थी, तब हमने या हमारे कई मिनिस्टरों और अफसरों ने 15 साल तक सिर्फ इस बात की तनख्वाहें लीं कि वे हिन्दी की प्रगति में रोड़ा अटकाते

रहें?'' उलटे निर्लज्जतापूर्वक अपना दोष हिन्दी के विकास को बाधित कर कतिपय राजपुरूषों ने हिन्दी भाषियों को 'स्टुपिड' तक कहने का दुस्साहस किया। क्या यह दीप-स्वीकार की भाषा है? प्रजातंत्र में दोष-स्वीकार का अर्थ होता है, अपनी असमर्थता स्वीकार करना और इस्तीफा दे कर अलग हो जाना। क्या प्रधान मंत्री या गृहमंत्री या जो भी इस अकर्मण्यता का जिम्मेदार हो उसने इस्तीफा दिया? हुआ यही कि जो दोषी है वे तो अपने पद से चिपके रहे, और जिस हिन्दी के खिलाफ अपराध हुआ, दण्ड भी उसी को दिया गया, उस पर अंग्रेजी लाद कर। हम सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि सरकार की इन करतूतों में उस दोष को स्वीकार कर आगे उसका परिमार्जन करने के आश्वासन की सच्चाई का आभास कहाँ मिला, जिस पर विश्वास करने का सत्परामर्श इस वक्तव्य में दिया गया है। सरकार ने क्या भी ऐसा कुछ खुले आम स्वीकारा? यदि नहीं, तो सरकार की यह वकालत किस आधार पर वक्तव्य में की गयी है?

वास्तव में आगामी दस-बारह वर्षों में हिन्दी के लिए सम्यक् उद्योग करना चाहता है और हमें भी उसके आश्वासनों का उसी आग्रह के साथ लाभ उठाना होगा, जिस आग्रह के साथ हिन्दी के विरोधियों ने अंग्रेजी विषयक आश्वासन का लाभ उठाया है। मैं समझता हूँ कि वर्तमान स्थिति में सक्रिय सहयोग का यह मार्ग बुरा नहीं रहेगा- कम से कम एक बार आजमाने में कोई हर्ज नहीं है। मेरी अपनी धारणा है कि शासन ने जहाँ - सही या गलत ढंग से - यह अनुभव किया है कि अभी देश हिन्दी को एकमात्र राजभाषा के रूप में ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं है, वहाँ उसे इस बात का भी विश्वास हो गया है कि हिन्दी के विकासक लिए उचित व्यवस्था नहीं हुई और अब इस दोष का परिमार्जन करना ही होगा। हमें शासन को इस मन:स्थिति का लाभ उठाना चाहिए और जनता तथा शासन दोनों के सहयोग से अगामी दस-बारह वर्षों में योजना बद्ध कार्य करना चाहिए, राजकीय योजनाओं में सक्रिय योगदान करना चाहिए और उधर जनता के सहयोग तथा सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से अपनी योजनाएँ तैयार कर शासन का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। इससे निश्चय ही लाभ होगा। आज की परिस्थिति को देखते हुए यही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है।''

इस अत्यन्त संकटपूर्ण स्थिति में जब कुछ आवाजें ममहित हो कर खामोश हो गयी है, कुछ के स्वर में आक्रोश है किन्तु कोई रचनात्मक सुझाव नहीं, ऐसे समय में हिन्दी अध्यापकों की अखिल भारतीय परिषद् के अधयक्ष का यह वक्तव्य ने केवल महत्वपूर्ण है वरन प्रथम बार यह इस संकट से उपजी प्रतिक्रियाओं और मनोवृत्तियों का एक सम्यक् लेखा-जोखा आवश्यक भी है, क्योंकि जनतंत्र के सारे बुनियादी सिद्धान्तों की बवहेलना कर, विधान तक की उपेक्षा कर अंग्रेजी को जिस ढंग से लाद दिया गया है, उससे बड़ी नाजुक और विस्फोटक स्थिति पैदा हो गयी है। इसमें जो भी कदम उठाया जाए यह बहुत सोच समझ कर। भाषावेश या आक्रोश मात्र हमारे लक्ष्य की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकते यह बिलकुल सही बात है। लेकिन यह भी सही है कि मिथ्या

चिन्तन, या झूठे तर्क या अस्वस्थ मनोवृत्तियाँ भी उतनी ही नुकसानदेह हो सकती है। असहयोग और संघर्ष की मनोवृत्ति को हानिकर बताते हुए जिस प्रकार के सहयोग को इस वक्तव्य में एकमात्र रास्ता बताया गया है, उस रास्ते पर बढ़ने के पहले जरा उस सहयोग की सैद्धान्तिक नीवों की भी जाँच कर लेना जरूरी है ताकि हमारा अगला कदम हर तरफ से पुख्ता हो, कहीं भी झूठा न पड़े।

जाँच कर लेना इसलिए भी जरूरी है कि अभी-अभी हम इतिहास के एक ऐसे दौर से गुजर चुके हैं, जब इस देश में निहित स्वार्थ और मानसिक कायरता से लबालब भरा एक पूरा सम्भ्रान्त वर्ग ऐसा था जो हर प्रकार से सत्य, स्वाभिमान, राष्ट्रीय भावना, जन जागरण को एक कोने में रख कर निरन्तर यह आवाज लगाता था कि संघर्ष व्यर्थ है, सरकार से सहयोग करके उसकी कृपा से जो कुछ मिले वह ले लो। इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं। अपना नहीं तो बाल बच्चों का भविष्य तो देखो। सहयोग के झण्डाबरदार, अमन सभाओं के वे कुछ रायसाहबान और रायबहादुरान शायद मर चुके हों। लेकिन देखना यह है कि इस विश्वासघात की बेला में भी सहयोग के आह्वान में कहीं वहीं रायबहादुरी की अमनसभाई मनोवृति अपना रूप बदल कर साहित्य के क्षेत्र में तो फिर से जन्म नहीं ले रही है। या यह सचमुच ही स्थिथत का सही निरूपण है और एक मात्र श्रेयस्कार पथ है।

जाहिरा तौर पर इस वक्तव्य में कहीं गयी बातें बड़ी बेलौस और तर्कसम्मत लगती है। जिसने अभी-अभी खुल्लमखुल्ला विश्वासघात किया है, उसी के आगे फिर आँचल पसार कर विश्वास की भीख मांगना, एक बहुत भद्र और क्षमाशील हृदय की प्रतिक्रिया भी हो सकती है और एक अत्यंत जड़, स्वाभिमान हीन, स्वार्थान्ध सरकारपरस्त मन की कुटिल गति भी। इस वक्तव्य में सरकारकी यह निराधार वकालत कौन-से मन की उपज है, इसकी जाँच फिलहाल छोड़ दीजिए। जो समस्या हमारे सामने इस समय प्रस्तुत है, उसमें इतना ही समझ लेना काफी है कि सहयोग का यह भावनात्मक आधार बिलकुल खोखला है। पिछले 15 साल में, हिन्दी के मामले में इस सरकार का रूख प्रतिकूल रहा है और इस विधेयक के दौरान में इसका जो रूप प्रकट हुआ उसने हिन्दी के मामले में इसके रूख को हमारे विश्वास के सर्वधा अयोग्य सिद्ध कर दिया है। निजी तौर पर अपनी किसी भी नीति के अंतर्गत यह सरकार हिन्दी क्षेत्र के किसी व्यक्ति को विश्वास दे रही हो और उससे किसी मूल्य पर कोई विश्वास पा रही हो, यह एक दीगर बात है। उसमें हमें कुछ नहीं कहना। यहाँ तो सवाल एक समूचे प्रजातन्त्र के प्रसंग में एक सार्वजनिक विश्वास जगाने का है। ऐसी स्थिति में किसी एक व्यक्ति की निराधार वकालत मात्र से कोई सरकारी नीति सार्वजनिक विश्वास के योग्य कैसे हो जाएगी?

लेकिन खैर, मान लीजिए कि भावनात्मक आधार नहीं सही, अगर सैद्धांतिक आधार ठीक

है तो भी एक रास्ता निकल सकता है। वक्तव्य में कही गयी यह बात नितांत उचित प्रतीत होती है कि राजनीतिक दलदल में हिन्दी का उलझना ठीक नहीं। कहा गया है कि संघर्ष उसे अनिवार्यत: राजनीतिक दलदल में फँसा देगा। लेकिन प्रश्न यह है कि सरकार के प्रति सहज मन से विश्वास और उसकी योजनाओं के प्रति सम्पूर्ण सहयोग (संघर्ष या असहयोग को पूर्णतया वर्जित कर) क्या दलगत राजनीति की दलदल से हिन्दी को पृथक् रखने में समर्थ है? जरा बारीकी से जाँचिए तो यह तर्क भावनात्मक आधार वाले तर्क से भी ज्यादा खोखला निकलता है।

नागरिक शास्त्र की प्रारम्भिक कक्षाओं का विद्यार्थी भी यह जानता है कि प्रजातांत्रिक पद्धति में सरकार दलगत राजनीति से पृथक् कोई वस्तु नहीं, वह तो उस दलगत राजनीति की चरम परिणति मात्र होती है। यदि सत्ता के सन्दर्भ में सोचा जाए तो सत्तारूढ दल और विरोधी दल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो विरोधी दल जीत जाता है वह सत्तारूढ़ होकर सरकार बन जाता है और जो सरकार हार जाती है वह सत्ताच्युत हो कर विरोधी दल बन जाती है। इसलिए यह एक मिथ्या भ्रांति है कि संघर्ष के क्षेत्र में प्रवेश कर विरोधी दलों का समर्थन पा कर हम राजनीतिक दलदल में प्रवेश करते हैं और सरकार को सहयोग दे कर हम राजनीतिक दलदल से मुक्त रहते हैं। वास्तविकता यह है कि जब हम सरकार को सहयोग देते हैं तब भी हम एक राजनीतिक दल को ही सहयोग दे रहे हैं। यह बात दूसरी है कि वह दल इस समय सत्तारूढ़ है। उसका सत्तारूढ़ होना उसकी ''दलगत राजनीतिक दलदल'' को रंचमात्र कम नहीं करता, कुछ अंशों में उस दलदल को और भी लिसलिसा, चिपकाऊ, गन्दा और खौफनाक बना देता है। क्योंकि हमारे जैसे अविकसित प्रजातंत्र में सत्तारूढ़ दल पर विरोधी दलों या स्वतंत्र जनमत का वैसा अंकुश नहीं रहता जैसा अन्यत्र सम्भ्व है अत: यहाँ कितने ही गैरजनतांत्रिक तरीकों से सत्तारूढ़ दल अपने राजनीतिक दलदल को और भी जहरीला बना लेता है।

ऐसी स्थिति में तमाम घोषित सिद्धांतों को बालायेताक रख कर बहुधा सत्तारूढ़ दल अपनी समस्त नीतियाँ इस दृष्टि से निर्धारित करता है कि जैसे भी हो वह अपनी सत्ता बनाये रख सके। आज के वादे कल बदलने पड़ें, आज की घोषणाएँ कल बदलनी पड़ें, यहाँ तक कि आज के विधान की धाराएँ कल बदलनी पड़ें तो भी सत्तारूढ दल की संकोच नहीं होगा क्योंकि सतामाही राजनीति का यही तकाजा है। ऐसी सरकार की भाषा सम्बंधी नीति भी इसका अपवाद नहीं होगी। वह भी उसकी दलगत नीति का, उसके सतासंग्रह के कार्यक्रम का ही एक अंश होगा। जहाँ सत्ता संग्रह के लिए हिन्दी के पक्ष की बात करना जरूरी है यहाँ हिन्दी की बात करो, लेकिन जहाँ सत्ता संग्रह के लिए हिन्दी का वध जरूरी है वहाँ बेझिझक हिन्दी की जिग्रह करो। उसके लिए हिन्दी अधीष्ट नही है, उसके लिए तो अपनी कुर्सी और अपना ताज अभीष्ट है। वह हिन्दी की वही योजनाएँ चाहेंगी, उतनी ही सीमा तक चाहेंगी, उसी संग से चाहेगी, उसी दिशा में चाहेंगी जो उस सत्तारूढ़ दल की

शक्ति, गरिमा, लोकप्रियता और स्थायित्व को बढ़ा सके। जब हम सदलबल, आँख मूँद कर, विश्वास कर उस सत्तारूढ़ दल को समर्पण-पूर्ण सहयोग देना ही एकमात्र वध मान लेते हैं और किसी भी प्रकार के संघर्ष को वर्जित कर देते हैं तो क्या सचमुच राजनीतिक दलदल में आँख मूँद कर नहीं कूद पड़ते! हिन्दी की बुरी तरह फँसी लेने वाले उस सरकारी राजनीतिक दलदल का रूप इस प्रस्तावित सहयोग के बाद प्रकट हो। यह भी नहीं7 दिल्ली जा कर एक हफ्ते साहित्यिक क्षेत्रों में घूम कर लौअने वाला साधारण से साधारण व्यक्ति भी यह मानता है कि संघर्ष का .... के बाद हिन्दी राजनीतिक दलदल में जब पड़ेगी तब फँसेगी, लेकिन सहयोग का पथ अपना कर संसद में असीन हमारे श्रद्धास्पद राष्ट्रकवियों से ले कर हिन्दी संबंधी विभिन्न कर्मचारी तक, जिस राजनीतिक दलदल में फँसा दिये गये हैं उसमें से उनका निस्तार आसानी से नहीं हो पा रहा है।

इस नजरिये से अगर हम देखें तो इस वक्तव्य का सारा मन्तव्य ही उलटा नजर आता है। यानी सरकार का दलदल तो दलदल नहीं, शेष सब दलदल है। यह किसी एक दल की पूजा हो यह बात नहीं, यह केवल सत्ता-परस्ती है। क्योंकि और भी बारीकी से जाँचिए तो इस वक्तव्य का अ यह कि आज जो दल सत्तारूढ़ नहीं है उसकी राजनीति, उसकी हिन्दी संबंधी योजनाएँ दलदल है, लेकिन अगर कल वही दल सरकार बन जाए, उसे सता मिल जाए तो उसका दलदल सहयोग भाव से गले तक फँसने के योगय बन जाएगा। इसी का एक दूसरा पहलू यह कि आज जो दल सरकार के रूप में प्रतिष्ठित है और हिन्दी के विश्वासपूर्ण सहयोग का अधिकारी है, कल वहीं हार जाए और उसकी सता छिन जाए तो उसकी वही योजनाएँ दलदल हो जाएँगी। कुल मिला कर इस वक्तव्य की तर्क पद्धति हमें कहाँ ले आती है, कुछ पता नहीं चलता। इतना जरूर पता लगता है कि संघर्ष करके हिन्दी राजनीतिक दलदल में फँसे या न फँसे पर इस वक्तव्य के पीछे की जो मनोवृति है, वह बुरी तरह सत्ता-पूजा के दलदल में फँसी हुई है। यहाँ तक कि नजदीक से जाँचने पर यह वक्तव्य किसी हिन्दी समर्थक का नहीं वरन एक सरकारी वकील का वक्तव्य लगता है जिसकी मुख्य चिंता यह नहीं है कि हिन्दी का क्या होगा जिसकी मुख्य चिंता यह कि अपराध के बावजूद किसी तरह का संघर्ष सरकार को हिन्दी की ओर से न झेलना पड़े। चाहे आधार न भी हो पर सरकार जो भी कहे लोग उस पर विश्वास करें और जेसे चाहे वैसे वे उसे उसका सत्ताग्रहण की आकांक्षापूर्ति में हिन्दी के नाम पर सहयोग दें। अफसोस कि इस वक्तव्य के पीछे अन्ततोगत्वा वही अमनसभाई रायसाहबी मनोवृत्ति साबित होती हैं जो सत्य के लिए संघर्ष या असहयोग का खतरा उठाने से डरता है और 'सरकार माई बाप, चाहे मारे चाहे जिलाए'' की मनोवृत्ति का तत्व-चिन्तन का बाना पहनाने लगती है।

✧ ✧ ✧

रामदरश मिश्र 93 के हुए

सत्यप्रीय पाण्डेय

कार्यक्रम के दौरान डा. ओम 'निश्चल', डा. प्रेम जनमेजय, प्रताप सहगल व नरेशा शांडिल्य ने मिश्र जी के सर्जना के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए। सबने रामदरश के लेखन के सातत्य और सहज गंभीर अर्थमत्ता को रेखांकित किया। इस अवसर पर डा. हरीश नवल, स्नेह सुधा नवल, डा. जसवीर त्यागी, डा. सत्यप्रिय पाण्डेय, अलका सिन्हा, मनु सिन्हा, आदित्य देव, बी के शर्मा, शशिकांत, अनिल मीत, ताराचंद नादान, राजीव वत्स उपस्थित थे।

15 अगस्त 1947 को वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र ने अपने जीवन याता के 93 वर्ष पर्ण किए। इस अवसर पर उन्हें बधाई दने के लिए अनक साहित्यकार उनके सुपुत्र शशांक मिश्र के द्वारका स्थित आवास पर एकत्र हुए। कार्यक्रम डा. वेद मिश्र शुक्ल के बंशीवादन से आरम्भ हुआ। तत्पश्चात संगीतकार संजय 'प्रभाकर' ने मिश्र जी की दो कविताओं और नरश शडिल्य के एक गीत की संगीतबद्ध किया। श्री शांडिल्य का भी जन्म दिन 15 अगस्त ही है। मिश्र जी की पौत्री और शशांक जी की पुत्री स्निग्धा ने प्रभावशाली ढंग से शास्त्रीय स्वर में गायन भी प्रस्तुत किया।

इसी वर्ष 2017 में प्रकाशित मिश्र जी

की चार पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। अमन प्रकाशन, कानपुर द्वारा प्रकाशित साक्षात्कार की पुस्तक 'संवाद यात्रा' का प्रताप सहगल और हरिशंकर रांढी ने, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन से प्रकाशित काव्यसंग्रह 'रात सपने में' का डा. ओम 'निश्चल' ने, उपन्यास 'एक बचपन यह भी' का डा. गुरूचरण ने, ग़ज़ल संग्रह 'सपना सदा पलता रहा' का डा. पवन माथुर एवं नरेश शांडिल्य ने लोकार्पण किया। इस अवसर पर 'प्राची' मासिक पत्रिका का रामदरश मिश्र पर केंद्रित विशेषांक का भी साहित्यकार प्रेम जनमेजय द्वारा विमोचन किया गया।

इस अवसर पर प्रेम जनमेजय के व्यंग्य संग्रह 'भ्रष्टाचार के सैनिक' एवं लालित्य ललित की पुस्तकें 'चुप्पी में से' , 'उद्घोष' व 'आदत सी तुम्हारी' का भी लोकार्पण किया गया।

कार्यक्रम के दौरान डा. ओम 'निश्चल' , डा. प्रेम जनमेजय, प्रताप सहगल व नरेशा शांडिल्य ने मिश्र जी के सर्जना के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए। सबने रामदरश के लेखन के सातत्य और सहज गंभीर अर्थमत्ता को रेखांकित किया। इस अवसर पर डा. हरीश नवल, स्नेह सुधा नवल, डा. जसवीर त्यागी, डा. सत्यप्रिय पाण्डेय, अलका सिन्हा, मनु सिन्हा, आदित्य देव, बी के शर्मा, शशिकांत, अनिल मीत, ताराचंद नादान, राजीव वत्स उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन डा. लालित्य 'ललित' ने किया। डा. स्मिता मिश्र का कैमरा कार्यक्रम को अपने में उतारता रहा। परिवारजनों में पत्नी सरस्वती जी, पुत्र शशांक मिश्र एवं पुत्रवधु रीता मिश्र ने हार्दिक आभार व्यक्त किया।

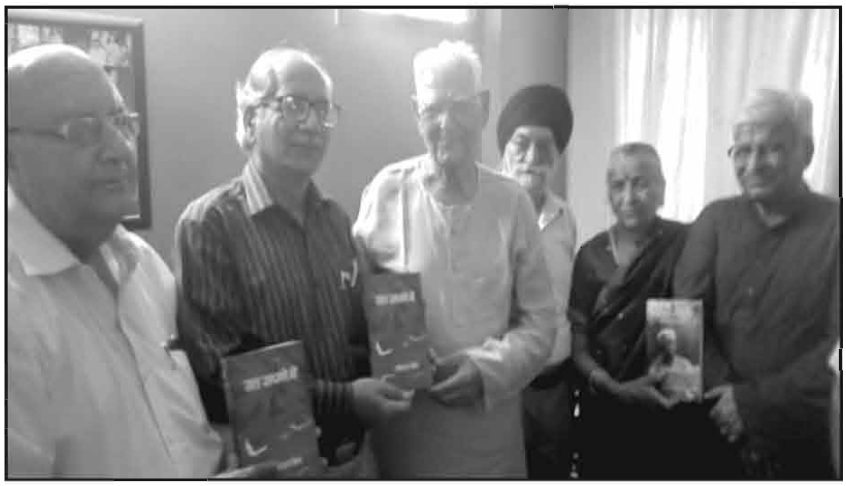

✧ ✧ ✧

श्रद्धांजलि

प्रो. चंद्रकांत लाल दास

मैहर सेनिया घराने के सरोद वादक पं चंद्रकांत लाल दास का 17 अगस्त 2017 को पटना में स्वर्गवास हो गया। वे 83 वर्ष के थे और बाबा अलाउद्दीन खाँ के शिष्य थे। बिहार संगीत जगत के प्रसिद्ध हस्ताक्षर थे। संगीत समीक्षा में उनका योगदान अविस्मरणीय है। 'संगीत' मासिक में 50–60 के दशकों में 'गगन संगीत' स्तंभ के लिए उन्होंने रेडियो के अखिल भारतीय कार्यक्रमों की निरंतर संगीत समीक्षा लिखी।

प्रो. दास ने अपनी पाँच पुत्रियों और पुत्र को संगीत और नृत्य के क्षेत्र में कलाकार बनाने का संकल्प लिया। किसी पिता के लिए यह निर्णय उस दौर में बड़ा क्रांतिकारी था। वे 'पटना संगीत संकल्प' के अध्यक्ष थे। संगीत–लेखन के लिए उन्हें 'काका हाथरसी संगीत सम्मान' से नवाजा गया था। बिहार कला संस्कृति विभाग द्वारा संगीत में योगदान के लिए उन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पूर्व केन्द्रीय मंत्री कुमारी शैल्जा द्वारा उन्हें प्रतिष्ठित अभिनव गुप्त सम्मान से भी सम्मानित किया गया था।

साहित्य यात्रा परिवार तथा बिहार के समस्त संगीत कला प्रेमियों की ओर से प्रो. चंद्रकांत लाल दास को विनम्र श्रद्धांजलि...

✧ ✧ ✧